RNI No.: MPHIN/2018/77137

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

पाठशाला
भीतर और बाहर

Azim Premji University

ISSN 2582-483X

अंक 22 | दिसम्बर 2024 | तिमाही

समावेशी शिक्षा विशेषांक

पाठशाला
भीतर और बाहर
दिसम्बर 2024 | अंक 22

सम्पादकीय टीम

- **प्रतिभा कटियार (मुख्य सम्पादक)**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  आमवाला तरला, सहस्त्रधारा रोड
  देहरादून, उत्तराखण्ड – 248001
  pratibha.katiyar@azimpremjifoundation.org

- **शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता (सह सम्पादक)**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  सर्वे नंबर 66, बुरुगुंटे विलेज
  बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा
  बेंगलूरु, कर्नाटक – 562125
  shefali.mehta@apu.edu.in

- **प्रकाशन कार्यालय**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  सर्वे नंबर 66, बुरुगुंटे विलेज
  बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा
  बेंगलूरु, कर्नाटक – 562125
  publications@apu.edu.in

- **गौतम पाण्डेय**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  भोपाल, मध्य प्रदेश
  gautam@azimpremjifoundation.org

- **सुनील कुमार साह**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  रायपुर, छत्तीसगढ़
  sunil@azimpremjifoundation.org

- **जगमोहन कठैत**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  देहरादून, उत्तराखण्ड
  jagmohan@azimpremjifoundation.org

- **दीपक कुमार राय**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  जयपुर, राजस्थान
  deepak.rai@azimpremjifoundation.org

- **सिद्धार्थ कुमार जैन**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  भोपाल, मध्य प्रदेश
  siddharth.jain@azimpremjifoundation.org

- **रजनी द्विवेदी**
  असम वैली स्कूल
  तेजपुर, असम
  rajni.dwivedi@azimpremjifoundation.org

- **कमलेश जोशी**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड
  kamlesh@azimpremjifoundation.org

- **राघवेंद्र हेर्ले**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  बेंगलूरु, कर्नाटक
  raghavendra.herle@azimpremjifoundation.org

- **अनुवाद सम्पादक**
  मधुकर एस पुट्टी (कन्नड़)
  राजेश उत्साही (हिन्दी)
  शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता (अँग्रेज़ी)
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु, कर्नाटक

- **प्रकाशन टीम**
  मीरा प्रभु
  शाहनाज़ बेगम
  लोकराम वी जी
  संबित महापात्र
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  बेंगलूरु, कर्नाटक

- **डिज़ाइन**
  आवरण चित्र – डिज़ाइन टीम
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु, कर्नाटक
  लेआउट – गणेश ग्राफिक्स
  भोपाल, मध्य प्रदेश

- **प्रिंटिंग**
  लक्ष्मी मुद्रणालय
  बेंगलूरु, कर्नाटक

पाठशाला भीतर और बाहर अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय द्वारा स्कूली शिक्षा को केन्द्र में रखकर प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य देश भर के पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों तक अभ्यास–आधारित सामग्री पहुँचाकर उनका सहयोग करना है। यह एक मंच है *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*, *एनसीएफ–एसई* और *एनसीएफ–एफएस* के आलोक में शिक्षकों के अनुभवों, प्रभावी शिक्षण प्रक्रियाओं की साझेदारी का। *पाठशाला* मूलतः हिन्दी में, फिर अँग्रेज़ी और कन्नड़ में अनुवादित होकर प्रकाशित होती है।

सम्पादकीय

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका ने आपके साथ मिलकर अब तक 21 अंकों का सफ़र तय किया है। इस यात्रा में हमने एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा है। ज़रूरत के मुताबिक़, पत्रिका में बीच-बीच में बदलाव भी होते रहे। अब जबकि पत्रिका का 22वाँ अंक आपके हाथ में है, आपको इसमें भी कुछ बदलाव दिखेंगे। इस अंक के साथ पत्रिका नए कलेवर में तो प्रकाशित हो ही रही है, इसकी पहुँच भी बृहत् हो रही है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* और *एनसीएफ-एसई, एनसीएफ-एफएस* के आलोक में, समूचे भारत की स्कूली शिक्षा से जुड़े, और देश के अलग-अलग हिस्सों में शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे लोगों के प्रयासों को एक दूसरे से जोड़ने के लिए पत्रिका अब हिन्दी भाषा के अतिरिक्त अँग्रेज़ी और कन्नड़ में भी प्रकाशित होगी। इन तीन भाषाओं के साथ पत्रिका ज़्यादा शिक्षकों, शिक्षा में काम कर रहे लोगों व लेखकों तक पहुँच सकेगी। आप देखेंगे कि इस अंक में मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखण्ड, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, पुदुचेरी, तेलंगाना, नॉर्थ ईस्ट, झारखण्ड, दिल्ली, उत्तर प्रदेश से लेखक जुड़े हैं। प्रयास होगा कि इसमें प्रकाशित सामग्री ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे शिक्षक साथियों व सन्दर्भ व्यक्तियों के लिए और ज़्यादा उपयोगी हो। पत्रिका पहले की तरह तिमाही होगी, और वर्ष में एक अंक स्कूली शिक्षा से जुड़ी किसी थीम पर केन्द्रित होगा। जैसे कि इस अंक की थीम है–'स्कूली शिक्षा में समावेशन'।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में दर्ज यह इबारत, *"शिक्षा, सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन है। समतामूलक और समावेशी शिक्षा न सिर्फ़ स्वयं में एक आवश्यक लक्ष्य है बल्कि समतामूलक और समावेशी समाज निर्माण के लिए भी अनिवार्य क़दम है," पाठशाला भीतर और बाहर* पत्रिका के नए सफ़र के लिए ज़रूरी प्रस्थान बिन्दु लगी। स्कूली शिक्षा में समावेशन थीम के इस अंक का उद्देश्य शिक्षा के दस्तावेज़ों में दर्ज समावेशन की इबारतों को स्कूली प्रक्रियाओं में शामिल होते हुए देखना है। शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों में समावेशन को लेकर किस तरह का नज़रिया है, किस तरह की संवेदना है, किस तरह की चुनौतियाँ उनके सामने आती हैं, वे क्या कुछ कर रहे हैं और कैसे कर रहे हैं, इस अंक में उनके अनुभव लेखन से यही समझने की कोशिश की गई है। इस अंक में आपको शिक्षकों द्वारा कक्षा में किए गए समावेशन के प्रयासों के कुछ उदाहरण भी पढ़ने को मिलेंगे।

समावेशन शब्द एकबारगी विशेष दक्षता वाले बच्चों के बारे में ध्वनित होता मालूम होता है। लेकिन इसकी परतों को खोलने पर समझ में आता है कि इसमें विशेष दक्षता वाले बच्चों की बात तो निश्चित तौर पर है, साथ ही बात है अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विविध मनोभावों वाले वंचित समुदाय के बच्चों की शिक्षा और संसाधनों के बारे में भी।

यह उन प्रक्रियाओं के बारे में भी है जहाँ कुछ ही बच्चे प्रशंसा पाते रहते हैं, और कुछ ख़ास भूमिकाओं में देखे जाते हैं। यह उन प्रतियोगिताओं के बारे में भी है जहाँ कुछ बच्चों को तालियाँ बटोरने वाले, और कुछ को पीछे बैठकर तालियाँ बजाने वाले बच्चे बनाकर रख दिया है।

मामला इतना ही नहीं कि किस बच्चे को कौन-सा विषय लेना है, कौन-सा खेल खेलना है, कौन-सी सांस्कृतिक गतिविधि में भाग लेना है, बल्कि समावेशन की चिन्ता के दायरे में यह भी है कि स्कूल और घर-परिवार के रोज़मर्रा के कामों में लड़कों और लड़कियों की भूमिकाबद्ध छवियों को कैसे देखा जाता है। समझना यह भी है कि दुनिया भले ही चाँद और मंगल पर पहुँच रही है, लेकिन लड़कियों को एक जैविक बदलाव 'माहवारी' के चलते आज भी शिक्षा की चुनौतियों से जूझना पड़ता है। शिक्षा में समावेशन से जुड़े ऐसे कई मसलों पर आप इस अंक में लेख पढ़ेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 समावेशन के बारे में विस्तार से बात करते हुए कहता है, "*स्कूल विविध सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित (एसईडीजी, जैसे– प्रवासी समुदाय, निम्न आय वाले परिवार, असहाय परिस्थिति में रहने वाले, बाल तस्करी के शिकार, अनाथ, भीख माँगने वाले); अलग-अलग सांस्कृतिक-सामाजिक पहचान (जैसे– अनुसूचित जाति-जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक, महिला व ट्रांसजेंडर); विविध धार्मिक अस्मिताओं; और भाषाई व भौगोलिक पहचान (जैसे– गाँव, क़स्बे, विशेष आवश्यकता के); आदि विभिन्न परिवेश से आने वाले हर बच्चे के लिए सम्मानपूर्ण जगह बने।"*

हमारे संवैधानिक मूल्यों में रचे बसे स्नेह और सम्मान जैसे मानवीय मूल्य हर बच्चे के लिए ज़रूरी हैं। इस अंक में आप ऐसे अनुभव पढ़ेंगे जहाँ शिक्षकों ने मानवीय मूल्यों को समावेशन का आधार बनाया, जिससे उनका सिखाना और बच्चों का सीखना बेहतर हुआ। इस अंक के लिए आए तमाम लेखों में जो अनुभव, प्रक्रियाएँ और सरोकार हमें देखने को मिले, उनसे शिक्षक साथियों के प्रति भरोसा और भी ज़्यादा मज़बूत होता है।

शिक्षकों ने उन वजहों को समझा जिनके चलते बहिष्करण होता है, जिनके कारण कुछ बच्चे स्कूलों में, कक्षाओं, खेलों, और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पीछे छूटते रहते हैं। अकसर ये वजहें इतनी महीन होती हैं कि न बच्चों को पता चलता है और न ही शिक्षकों को। लेकिन यह सवाल बड़ा है कि अगर कक्षा का हर बच्चा सीखने, खेलने, और स्कूली प्रक्रियाओं में शामिल नहीं है तो क्या शिक्षा अपने उद्देश्य में सफल है। इस बात को समझना समावेशन की तरफ़ बढ़ा एक अहम क़दम है।

यह अंक प्रारम्भिक शिक्षा में समावेशन के कुछ ज़मीनी उदाहरणों, अनुभवों और चुनौतियों को सहेजने का एक छोटा-सा प्रयास है। एक ही अंक में सबकुछ समाहित होना सम्भव नहीं था। बहुत-से और भी पहलू हैं जिनपर बात होनी है जो आगे के अंकों में होती रहेगी। यह बस एक खिड़की खोलने जैसा है, और देखना है कि समझ और संवेदना कैसे सम्भावना का आसमान बड़ा कर देती है।

आप सब सुधी पाठक हैं। आपकी राय और सुझावों ने हमेशा पत्रिका को बेहतर बनाने के लिए प्रेरित किया है। आगे भी इसी तरह हमसे जुड़े रहिए, पढ़ते रहिए *पाठशाला भीतर और बाहर,* और भेजते रहिए अपने अनुभव लेख के रूप में, सुझावों के रूप में।

शुभकामनाओं सहित

प्रतिभा कटियार
मुख्य सम्पादक

अनुक्रम

सम्पादकीय

1. केवल नामांकन के स्तर पर समावेशन पर्याप्त नहीं है — 5
मधु कुशवाहा

2. समावेशी पद्धतियों की दिशा में कुछ छोटे–छोटे क़दम — 8
जयना जगानी और रीमा कौर

3. बच्चों की शिक्षा पर सामाजिक–भावनात्मक समर्थन का प्रभाव — 12
दीपिका झाला

4. सीखने पर हक़ तो सबका बराबर है — 15
विष्णु गोपाल

5. बच्चे जिन्हें ज़रूरत है अधिक देखभाल और अवसरों की — 19
सुजाता रावी और दसन्ना मरेड्डी

6. कलाओं को समावेशी बनाने में शिक्षक की भूमिका — 22
दीपिका शर्मा

7. प्यार और समानता से बच्चों का सीखना सुगम होता है — 26
ममता सिंह

8. लड़कियों में माहवारी और उसका सीखने से सम्बन्ध — 29
रुबीना ख़ान

9. एक विशेष विद्यालय का समावेशी विद्यालय बनना — 32
आर लालमाछुआनी

10. सीखने के स्तरों में विविधता का प्रबन्धन : कुछ रणनीतियाँ — 35
अक्षता एस बेल्लुडी

अनुक्रम

11. संगीत शिक्षा सभी के लिए 38
संतोष राज के

12. किशन अब ख़ुश रहता है 41
ओम प्रकाश सिंह

स्थाई स्तम्भ

13. शिक्षकों की डायरी से 44
गजालक्ष्मी टी
कुसुम लता शर्मा
मधुमालती
पूनम भाटिया

14. उम्मीद जगाते शिक्षक - संगीता फरासी 49
प्रतिभा कटियार

15. किताबों से दोस्ती 54
शारून सनी
ध्रुवा देसाई
निशा नाग

16. आइए, करके देखें 58

17. सम्पादक के नाम 60

* लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
* पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का उपयोग शैक्षणिक और ग़ैर-व्यावसायिक कार्यों के लिए किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए लेखक एवं प्रकाशक से अनुमति लेना एवं स्रोत का उल्लेख अनिवार्य है।
* बच्चों की पहचान सुरक्षित रखने के लिए पत्रिका में उनके नाम बदल दिए गए हैं।
* आवरण पृष्ठ में समावेशिता को कई तरीक़ों से दर्शाया गया है, जिसमें अँगूठे के निशानों से बना वृक्ष अवधारणा के मूल में विविधता को दर्शाता है।

केवल नामांकन के स्तर पर समावेशन पर्याप्त नहीं है

मधु कुशवाहा

लेख में *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* में विद्यालयों और संस्थानों में समावेशन के लिए क्या नीतिगत विचार प्रस्तुत किए गए हैं, और इन्हें लागू करने की मुख्य समस्याएँ क्या हैं, के बारे बताया गया है। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान की एक अध्यापिका ने विश्वास जताया कि क्षमतावान एवं संवेदनशील शिक्षक ही विद्यालयों व अन्य शिक्षण संस्थानों में समावेशन की संस्कृति के वाहक बन सकते हैं।

भारत सहित दुनिया की सभी शिक्षा व्यवस्थाएँ और प्रक्रियाएँ शत प्रतिशत समावेशी होने का दावा नहीं कर सकती हैं। इसकी दो वजहें हैं; पहली, समावेशन एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। जब हम एक स्तर पर या समूह के लिए समावेशन की माँगों को पूरा करते हैं तो शिक्षा सुविधाओं के प्रसार से नई सामाजिक पहचानों के साथ नए विद्यार्थियों की नई माँगों का आना स्वाभाविक है।

दूसरी, समावेशी शैक्षिक नीतियों को लागू करने की ज़िम्मेदारी जिन अधिकारियों, शिक्षकों पर होती है, वे सब उसी समाज के सदस्य होते हैं जो ग़ैर-समावेशी व्यवहारों को विभिन्न आधारों पर अभी तक जायज़ ठहराता आया है। इसलिए सभी में, और विशेषकर शिक्षकों में, समावेशन के सिद्धान्तों के प्रति सकारात्मक सोच बनाना और उनकी क्षमताओं का निर्माण करना, नीतियों को लागू करने की पहली शर्त बन जाता है।

भारत की स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा के लगभग सभी आयोगों की रपटों में समावेशन की आवश्यकता और महत्त्व को रेखांकित किया गया है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* में भी समावेशी शिक्षा पर बहुत ज़ोर है।

"शिक्षा, सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन है। जहाँ समतामूलक और समावेशी शिक्षा न सिर्फ़ स्वयं में एक आवश्यक लक्ष्य है, बल्कि समतामूलक और समावेशी समाज निर्माण के लिए भी अनिवार्य क़दम है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को सपने सँजोने, विकास करने और राष्ट्र हित में योगदान करने का अवसर उपलब्ध हो।... यह नीति इस बात की पुन: पुष्टि करती है कि स्कूल शिक्षा में पहुँच, सहभागिता और अधिगम परिणामों में सामाजिक श्रेणी के अन्तरालों को दूर करना सभी शिक्षा क्षेत्र विकास कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य होगा।" *–राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, अध्याय 6, बिन्दु 6.1, पृष्ठ 38*

चित्र 1 : सहभागिता, सामाजिक अन्तरालों को खेलों के ज़रिए दूर करतीं शिक्षिका

नीति आगे कहती है, "शिक्षा प्रणाली से सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित वर्गों (एसईडीजी) के बाहर हो जाने से जुड़े बहुत सारे कारण विद्यालयी शिक्षा प्रणाली और उच्चतर शिक्षा प्रणाली में समान हैं। इसलिए, विद्यालयी शिक्षा और उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में समता, समानता और समावेश से जुड़ा दृष्टिकोण एक समान होना चाहिए। अतः उच्चतर शिक्षा में समता, समानता और समावेशन के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक नीतिगत पहलों को स्कूली शिक्षा के लिए भी देखा जाना चाहिए।" *–राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, अध्याय 14, बिन्दु 14.2, पृष्ठ 66*

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में समावेशन

समावेशी शैक्षिक नीतियों को लागू करने की कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक समावेशन के लिए शिक्षकों की क्षमता और अभिवृत्ति का निर्माण न किया जाए। इसीलिए वर्ष 2014 से लागू दो-वर्षीय सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में समावेशी शिक्षा का एक कोर्स जोड़ा गया है। इसका लक्ष्य है कि शिक्षक समावेशन के सम्प्रत्यय, सिद्धान्त और महत्त्व को न केवल समझें वरन् इसे अपने शिक्षण व्यवहार और अभ्यास का अभिन्न अंग बनाएँ।

मेरे विचार से अगर किसी शिक्षक ने अपनी शैक्षिक यात्रा में कभी समावेशित होने का अनुभव किया है तो वह बेहतर तरीक़े से समावेशन के सिद्धान्त को समझ सकता है, और व्यवहार में उतार सकता है। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम अपने प्रशिक्षुओं को समावेशी शिक्षा की रणनीतियों को बेहतर तरीक़े से सिखा सकते हैं और उनमें समावेशन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण बना सकते हैं। अपने शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में समावेशन के लिए किए गए कुछ प्रयासों के बारे में बात करूँगी।

समावेशन की सही और गहरी समझ विकसित करना

समावेशन के कई आयाम हैं। लेकिन समावेशन को विद्यार्थियों समेत ज़्यादातर लोग केवल नामांकन के सन्दर्भ में समझते हैं। उनके अनुसार, नामांकन में वरीयता दे देने से समावेशन का लक्ष्य पूरा हो जाता है, और विद्यालय में सफलता-असफलता की ज़िम्मेदारी विद्यार्थी की मान ली जाती है। यह समझ अकादमिक सफलता-असफलता को प्रयास, मेहनत और बुद्धि जैसे निहायत व्यक्तिगत कारकों तक सीमित करती है और इनके पीछे के सामाजिक-संरचनात्मक कारकों, सुविधाओं व बाधाओं को नहीं देख पाती है। दुर्भाग्य से, समावेशन का सतही दृष्टिकोण भारतीय समाज में काफ़ी व्यापक और प्रभावी तौर पर प्रचलित है।

> **"सही अर्थों में समावेशन, भाषागत, पाठ्यक्रम सम्बन्धी, शिक्षण सामग्री, सीखने व मूल्यांकन के तौर-तरीक़ों, और विद्यालय के रोज़मर्रा के जीवन में समायोजन, अनुकूलन और बदलाव की माँग करता है।"**

समावेशी नामांकन, समावेशन की ओर उठाया गया पहला क़दम है। सही अर्थों में समावेशन, भाषागत, पाठ्यक्रम सम्बन्धी, शिक्षण सामग्री, सीखने व मूल्यांकन के तौर-तरीक़ों, और विद्यालय के रोज़मर्रा के जीवन में समायोजन, अनुकूलन और बदलाव की माँग करता है।

अध्यापकों को समावेशन के व्यापक और सही अर्थ से परिचित कराने की ज़िम्मेदारी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की है। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में प्रवेश लेने वाले प्रशिक्षु अलग-अलग शैक्षिक पृष्ठभूमि के होते हैं। लगभग सभी इस बात में यक़ीन करते हैं कि प्रवेश में आरक्षण ही समावेशन है, और अकादमिक असफलता व्यक्तिगत वजहों से है। ऐसे में, प्रशिक्षुओं को यह बात समझाना किसी चुनौती से कम नहीं है कि विद्यार्थी की विद्यालय में मिलने वाली सफलता-असफलता में सामाजिक-संरचनात्मक कारकों की निर्णायक भूमिका होती है। किसी भी विद्यार्थी की जातिगत, जेंडर और वर्गीय इंटरसेक्शनल पहचान उसके लिए विद्यालय में सुविधाओं या वंचनाओं की एक संरचना बना देती है। यह संरचना विद्यालय में सफल होने या फ़ेल हो जाने के लिए ज़िम्मेदार है। विद्यालय में सफलता का सीधा सम्बन्ध केवल विद्यार्थियों की जन्मजात बौद्धिक क्षमताओं से नहीं होता।

समावेशन का सही मतलब समझाने के लिए कक्षा में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत शैक्षिक यात्रा को साझा करना एक कारगर रणनीति है। इसके लिए कोर्स की शुरुआत में ही मैं विद्यार्थियों को उनकी व्यक्तिगत शैक्षणिक यात्रा का दस्तावेज़ीकरण करने का कार्य देती हूँ, और कुछ बिन्दुओं पर सोचने व लिखने को कहती हूँ। जैसे– उन्होंने कहाँ से पढ़ाई की; किस क़िस्म के स्कूल में गए; उन्हें अपनी पढ़ाई में कितना पारिवारिक सहयोग मिला; वो उच्च शिक्षा में क्या पढ़ना चाहते थे; जो कोर्स या संस्थान वो चाहते थे क्या उसमें पढ़ पाए; क्या उन्हें शिक्षा प्राप्त करने में किसी क़िस्म की दिक़्क़तें आईं; आदि। यदि इन सवालों के जवाब 'हाँ' हैं तो उन वजहों या कारकों के बारे में लिखें जिन्होंने इसे सम्भव बनाया। इसी तरह, अगर इन सवालों के जवाब 'नहीं' हैं तब भी उन कारकों या वजहों की पहचान करें जो इसके लिए ज़िम्मेदार रही हैं। इसके बाद, मैं उनके लिखित कार्य पर परिचर्चा आयोजित करती हूँ, और उनके ही व्यक्तिगत शैक्षिक अनुभवों के आधार पर स्कूली सफलता-असफलता हेतु ज़िम्मेदार सामाजिक-संरचनात्मक कारकों की पहचान की जाती है। परिचर्चा से विद्यार्थियों को जेंडर पहचान और शैक्षिक अवसर, हिन्दी भाषी और विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों का शिक्षा क्षेत्र में सफलता पाने का संघर्ष, वर्गीय स्थिति और अँग्रेज़ी माध्यम में स्कूली व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पाने के अवसर के बीच सम्बन्ध फ़ौरन समझ आ जाते हैं।

इस तरह की परिचर्चा विद्यार्थियों में यह समझ विकसित करने में सहायक होती है कि आरक्षण द्वारा कुछ हद तक समावेशी नामांकन सुनिश्चित करने के बावजूद विद्यालय या संस्थान में पाठ्यक्रम व भाषागत समायोजन, और संरचनात्मक सुविधाओं (रैम्प, शौचालय, ब्रेल प्रिंटर, बोलकर पढ़ने वाले कम्प्यूटर प्रोग्राम, आदि) में प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है, ताकि सभी विद्यार्थी शैक्षिक प्रक्रियाओं में समान भागीदारी कर पाएँ।

भाषागत समावेशन

भारत में अँग्रेज़ी भाषा का शिक्षा में वर्चस्व निर्विवाद है। पाठ्य सामग्री, पुस्तकों की उपलब्धता और कक्षा प्रक्रिया में अँग्रेज़ी भाषा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भागीदारी के अवसर ज़्यादा उपलब्ध हैं। ग़ैर-अँग्रेज़ी भाषी विद्यार्थी इससे काफ़ी भयभीत रहते हैं। अनुदेशन की भाषा के रूप में हिन्दी और अँग्रेज़ी, दोनों मान्य हैं, लेकिन स्तरीय पाठ्य सामग्री, सन्दर्भ पुस्तकें, आदि ज़्यादातर अँग्रेज़ी में ही उपलब्ध हैं। इसलिए हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी ख़ुद को बहिष्कृत समझते हैं और पढ़ने की प्रक्रिया में लगातार विषय वस्तु और अँग्रेज़ी भाषा, दोनों से जूझते रहते हैं। अपने कोर्स में, जब मैंने उन्हें हिन्दी में अनूदित कुछ पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराई तो उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ और कक्षा में उनकी भागीदारी बढ़ी। यह मेरे द्वारा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के 'अनुवाद सम्पदा' कार्यक्रम के साथ जुड़ने से सम्भव हुआ। यह कार्यक्रम शिक्षा पर हिन्दी में लिखी गई व अनुवादित सामग्री की उपलब्धता एक बड़ा ऑनलाइन स्रोत है जिसका प्रयोग विद्यार्थियों के भाषाई बहिष्करण को कम करके उनके समावेशन को बढ़ाता है।

विद्यालय के रोज़मर्रा के जीवन में समावेशन

विशेष शारीरिक आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की नज़र से देखें तो शैक्षिक संस्थान, स्कूल उनके लिए एक चुनौतीपूर्ण जगह है। जब हम विशेष शारीरिक आवश्यकता की बात करते हैं तो हमारे ज़ेहन में सबसे पहले शारीरिक रूप से अक्षम विद्यार्थी ही आते हैं। सामान्य तौर पर, हम लड़कियों को इस श्रेणी में नहीं रखते हैं। उनकी माहवारी सम्बन्धी जैवशारीरिक विशेष आवश्यकता की तरफ़ योजनाकारों, शिक्षा अधिकारियों, शिक्षकों का ध्यान ही नहीं जाता है।

समाज में प्रचलित यह धारणा काफ़ी हानिकारक है कि एक लड़की या महिला को अपनी माहवारी का प्रबन्धन 'चुपचाप' और व्यक्तिगत तौर पर करना चाहिए। इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर न तो सार्वजनिक विमर्श की माँग होती है न ही विद्यालय में माहवारी प्रबन्धन के लिए सुविधाओं की माँग की जाती है।

माहवारी के बारे में अपर्याप्त स्वास्थ्य शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य का एक वैश्विक मुद्दा है। माहवारी का मुद्दा इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह या तो कई मानव अधिकारों के सम्बन्ध में हमारी धारणा को सुगम बनाता है या बाधित करता है। मेंसट्रूएटर्स (मुख्यतौर पर, लड़कियाँ व महिलाएँ और अन्य नॉन बाइनरी ट्रांस लोग भी) के लिए विद्यालय और कार्यस्थल पर कुछ विशेष सुविधाएँ आवश्यक हैं। इनका अभाव विद्यालय या शिक्षा संस्थानों में उनके समावेशन को प्रभावित करता है। लड़कियों की शिक्षा के अवसर को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने के बावजूद विद्यालयी शिक्षा और अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम से यह मुद्दा ग़ायब है। प्रशिक्षु अध्यापिकाएँ-अध्यापक, जो शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में इस चुप्पी की संस्कृति के तहत दीक्षित होते हैं, ख़ुद शिक्षक बनने पर इसी संस्कृति को आगे बढ़ाते हैं।

मैं माहवारी से सम्बन्धित बातचीत को 'सामान्य' (नॉर्मलाइज़) करना चाहती थी ताकि नए मेंसट्रूएटर्स एक 'सकारात्मक स्व' के साथ बड़े हों, न कि इस भावना के साथ कि माहवारी की वजह से उनका शरीर अपवित्रता या अशुद्धता का स्रोत है। एक अध्ययन के अनुसार, भारत में केवल 4 शिक्षा बोर्डों की पाठ्य पुस्तकों में माहवारी सम्बन्धी पाठ दिए गए हैं, और उनमें से केवल दो में ही माहवारी से जुड़ी मिथ्या धारणाओं पर अंश हैं (Kushwaha & Maurya, 2017)। इस अध्ययन में विद्यार्थियों से पता चला कि पाठ्य पुस्तक में माहवारी पर पाठ होने के बाद भी अध्यापिकाएँ-अध्यापक इसे पढ़ाने से हिचकिचाते हैं। वे कहते हैं कि इस पाठ को घर में ख़ुद से पढ़ लेना। ऐसी स्थिति में मुझे लगा कि हमें ऐसे शिक्षकों को तैयार करना ज़रूरी है जो इस विषय पर खुलकर बात कर सकें, और भविष्य में अपने युवा विद्यार्थियों के लिए एक सपोर्ट बनें।

मेरी कोशिश यह रहती है कि हम माहवारी उत्पाद प्रदान करने का काम गुपचुप तरीक़े से न करें। यथा– मैं उनसे कहती हूँ कि माहवारी उत्पाद की आवश्यकता होने पर स्पष्ट आवाज़ में माँगें, बहुत धीमे से कान में न कहें। साथ ही, अगर कक्षा में पुरुष शोधार्थी हैं तो मैं सायास उनसे ही कहती हूँ कि इन्हें सेनेटरी पैड दें। प्रशिक्षु अध्यापिकाएँ-अध्यापक माहवारी से जुड़े मुद्दों पर खुलकर चर्चा करते हैं, और उनका विश्वास है कि वे भविष्य में युवा विद्यार्थियों से इस मुद्दे पर बात करने और उन्हें सहायता देने के लिए तैयार हैं।

कुछ अनुभवों के माध्यम से मैंने उन रणनीतियों या प्रयासों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जिनके द्वारा अध्यापक शिक्षा में समावेशी व्यवहारों को अपनाकर, मैं यह उम्मीद करती हूँ कि भावी अध्यापिकाएँ-अध्यापक अपनी कक्षाओं, विद्यालयों में इन विमर्शों को आगे बढ़ाएँगे।

सन्दर्भ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

Kushwaha, M. & Maurya, A. (2017) 'Menstruation and Textbook.' *International Refereed Journal of Reviews and Research.* Vol. 5, Issue 5, September 2017 https://www.irjrr.com/research/index.php/vol–5–issue–5–september–2017

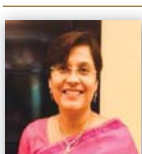

मधु कुशवाहा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के शिक्षा संकाय में पिछले 25 वर्षों से अध्यापनरत हैं। इन्होंने शिक्षा के सामाजिक सन्दर्भ और शिक्षा में जेंडर के मुद्दों को अपने अध्यापन एवं शोध का विषय बनाया है।

सम्पर्क : mts.kushwaha@gmail.com

समावेशी पद्धतियों की दिशा में कुछ छोटे–छोटे क़दम

जयना जगानी और रीमा कौर

समावेशन का अर्थ केवल बड़े नीतिगत बदलाव करना या उन बदलावों का अपने स्कूलों में आने का इन्तज़ार करना नहीं है। शिक्षिका श्रीमती अनीता और श्रीमती बबीता के पास समावेशी शिक्षा और अलग-अलग ज़रूरतों वाले बच्चों को पढ़ाने का कोई ख़ास प्रशिक्षण नहीं है, फिर भी वे विशेषज्ञों की सलाह से सभी शिक्षार्थियों के लिए पाठों को बेहतर ढंग से पढ़ाने के लिए कड़ी मेहनत करती हैं।

चित्र 1 : समावेशन, यानी सभी बच्चों की भागीदारी

शब्द चित्र 1

हर्षिता 6 साल की है। वह मेरठ के ग्रामीण इलाक़े के एक ऐसे निजी स्कूल में जाती है जहाँ फ़ीस बहुत ज़्यादा नहीं है। जब वह 4 साल की थी तब उसकी माँ गम्भीर रूप से बीमार पड़ गई। इसके कारण हर्षिता एक साल से ज़्यादा समय तक स्कूल नहीं जा पाई, और उसकी पढ़ाई में भी रुकावट आई। जब वह लगभग 6 साल की हुई तब फिर से स्कूल जाने लगी। शिक्षकों ने हर्षिता के माता-पिता को सलाह दी कि वे उसे पढ़ने और लिखने का अभ्यास करवाएँ ताकि वह पाठ्यक्रम को समझ सके।

पहली कक्षा में, अँग्रेज़ी, हिन्दी व्याकरण, गणित, आदि विषयों को सीखने के लिए अलग-अलग तरह की ज़रूरतें होती हैं, जिन्होंने हर्षिता को परेशान कर दिया। किसी भी तरह के लिखित काम को लेकर वह हताश होने लगी। नतीजतन, वह दूसरे बच्चों को मारने लगती, चीख़ने-चिल्लाने लगती, और कभी-कभी रोने भी लगती। जब यह सब नियमित रूप से होने लगा तो शिक्षकों ने हर्षिता के माता-पिता को बुलाया। उसकी माँ ने उनका साथ दिया, और हर्षिता के व्यवहार को पहचानने की कोशिश की। "मैम, आप प्लीज़ थोड़ा ध्यान दें। आप जानती हैं कि यह ऐसी ही है। इसे कम काम देना क्लास में, मैं घर पर बाक़ी का करवा दूँगी," हर्षिता की माँ बस इतना ही कह सकीं।

शिक्षिका श्रीमती अनीता ने हर्षिता को लिखने का कम काम देकर उसकी मदद करने का फ़ैसला किया। यदि कक्षा को 8-10 शब्द लिखने होते तो हर्षिता से केवल 4-5 शब्द ही लिखने को कहा जाता। शिक्षिका हर्षिता की नोटबुक में प्रश्न लिख देतीं ताकि हर्षिता उत्तर देने पर ध्यान दे सके। उन्होंने हर्षिता को शान्त रहने की, गहरी साँस लेने जैसी कुछ तकनीकें सिखाने के साथ ही, विभिन्न भावनाओं, जैसे ख़ुशी / दु:ख / ग़ुस्सा / हताशा, आदि के फ़्लैशकार्डों का भी इस्तेमाल किया। हर्षिता अब अपनी भावनाओं को बेहतर ढंग से सँभाल पाती है। दिलचस्प बात यह है कि उसकी कक्षा के अन्य विद्यार्थी भी ऐसा करना सीख रहे हैं।

शब्द चित्र 2

12 वर्षीय मयूर कुछ वर्षों से स्कूल जा रहा था। उस दौरान पता चला कि उसे मिर्गी के दौरे पड़ते हैं। हालाँकि यह बीमारी हल्की थी, लेकिन उसे बार-बार दौरे पड़ते थे। उसके माता-पिता उसे कुछ ऐसे डॉक्टरों के पास ले गए जिनका ख़र्चा वे उठा सकते थे। मयूर की हालत अब स्थिर है। लेकिन दवाओं के कारण उसे अकसर कक्षा में नींद आती है। वैसे तो उसने भाषा और अंकगणित में अच्छी क्षमता हासिल कर ली है, लेकिन उसे 40 मिनट तक ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होती है।

मयूर की माँ उसके शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखती हैं, लेकिन उन्होंने उसे 'आलसी' और 'बेकार' कहना शुरू कर दिया है। मयूर के पिता शान्त, अलग-थलग और उसकी स्कूली शिक्षा को लेकर उदासीन हो गए हैं। वे मयूर के बारे में किसी भी तरह की चर्चा में शामिल होने से कतराते हैं। माता-पिता ने पाँचवीं कक्षा में मयूर का दाख़िला कम फ़ीस वाले एक निजी स्कूल में करवाया।

शिक्षिका श्रीमती बबीता ने देखा कि अगर मयूर को दिन में थोड़ी देर सोने दिया जाए तो कक्षा में उसका ध्यान और गतिविधि काफ़ी बढ़ जाती है। वे सामूहिक गतिविधियाँ भी आयोजित करती हैं ताकि अन्य बच्चे मयूर को एक मित्र के रूप में जान सकें। अब वह बाहर जाता है, और अन्य सभी बच्चों की तरह खेलता है। शिक्षिका भी मयूर के स्वास्थ्य की स्थिति को समझने की कोशिश करती हैं, और उसकी प्रगति पर नज़र रखती हैं।

एक दिन जब मयूर को कक्षा में हल्का दौरा पड़ा तब पूरी कक्षा ने उसकी मदद की। ऐसे अनुभवों ने मयूर के माता-पिता को आश्वस्त किया। उन्होंने अभिभावक-शिक्षक बैठक के दौरान झिझकते हुए शिक्षिका से स्कूल में मयूर के स्वास्थ्य, आदि के बारे में जानकारी ली।

सभी बच्चों को शामिल करना

हर्षिता और मयूर दोनों में कोई विकलांगता नहीं है। दोनों ही कम फ़ीस वाले एक निजी स्कूल में पढ़ते थे। दोनों ने बहिष्करण/अस्वीकृति का अनुभव किया। मयूर के मामले में तो उसके घर का माहौल ही बहिष्कारपूर्ण है क्योंकि उसके परिवार वाले उसे 'आलसी' और 'बेकार' कहकर उसकी आलोचना करते हैं। इसलिए उसे भावनात्मक उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। हालाँकि समावेशन अकसर विशेष दक्षता वाले बच्चों को शामिल करने से जुड़ा होता है, लेकिन समावेशी होने का मतलब सभी बच्चों का स्वागत करना और उनका समर्थन करना है।

हर्षिता की स्कूली शिक्षा में रुकावट आई, जिससे उसे अपनी पढ़ाई जारी रखने में मुश्किल हुई। परिवार में किसी की बीमारी या मृत्यु, ख़राब स्वास्थ्य, रुपए-पैसों की समस्या, मौसमी प्रवासन, संघर्ष क्षेत्रों में हिंसा, आदि के कारण स्कूली शिक्षा में रुकावट के मामले अकसर सामने आते हैं। हर्षिता इनसे निपटने के लिए अप्रिय व्यवहार का सहारा लेती है। हमने देखा कि उसकी माँ समस्या को समझती थीं, और स्कूल के साथ सहयोग करने की कोशिश करती थीं। अधिकांश माता-पिता ऐसा प्रयास नहीं करते हैं।

मयूर के मामले में हमने देखा कि मिर्गी की पुरानी बीमारी बच्चे की स्कूली शिक्षा और जीवन की गुणवत्ता को काफ़ी प्रभावी कर सकती है। मिर्गी को अकसर एक छिपे हुए या अदृश्य विकार के रूप में जाना जाता है। यह बीमारी तब तक प्रकट नहीं होती जब तक किसी को दौरा न पड़ जाए। इस बीमारी को सामाजिक पूर्वाग्रह के तौर पर देखा जाता है, और इससे पीड़ित लोगों के साथ भेदभाव किया जाता है। मयूर को भी सीखने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और उसे एक सहयोगी वातावरण की आवश्यकता है।

सभी परिदृश्यों में समावेशन

हर्षिता की शिक्षिका, श्रीमती अनीता, यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती हैं कि उसपर ज़्यादा बोझ न पड़े। वे शिक्षण के आज़माए हुए सिद्धान्तों को लागू करने के प्रति सजग हैं। जैसे कि शिक्षार्थी के पूर्वज्ञान पर विचार करना और उसे सहारा देना, सीखने में प्रामाणिकता लाने के लिए शिक्षण को वास्तविक जीवन के अनुभवों से जोड़ना, उसके सीखने की गति और विकासात्मक प्रगति के प्रति संवेदनशीलता दिखाना, और सही मात्रा में चुनौती देना ताकि सीखना बोरियत पैदा न करे, बल्कि मज़ेदार और आकर्षक हो। संक्षेप में कहें तो, शिक्षिका ने यह दिखाया कि कैसे एक चौकस, संवेदनशील और विचारशील शिक्षक बनकर समावेशन का प्रयास किया जा सकता है।

मयूर की शिक्षिका, श्रीमती बबीता, उसके शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को प्राथमिकता देती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अगर मयूर को अकादमिक रूप से अच्छा प्रदर्शन करना है तो उसे समर्थन देना महत्त्वपूर्ण है। लेकिन इस दिशा में पहला क़दम यह सुनिश्चित करना है कि स्कूल में उसका स्वागत हो, और वह सहज व सुरक्षित महसूस करे। इस बात पर ध्यान दें

कि कैसे शिक्षिका न केवल मयूर के माता-पिता का विश्वास जीतती हैं, बल्कि यह भी सुनिश्चित करती हैं कि मयूर को स्कूल में किसी सामाजिक पूर्वाग्रह या भेदभाव का सामना न करना पड़े। हर्षिता और मयूर के उदाहरण दिखाते हैं कि जिन बच्चों को विशेष देखभाल और ध्यान की आवश्यकता होती है, उनका समर्थन करने में स्कूलों और शिक्षकों को कितना संघर्ष करना पड़ता है। और जहाँ संयोग से ऐसे प्रतिबद्ध शिक्षक मिल जाते हैं, वहाँ हम सीखने के सार्थक अनुभवों को मूर्त रूप में देख सकते हैं। दोनों शिक्षिकाएँ बच्चों को कक्षा में सहज महसूस कराने, और बेहतर ढंग से सीखने के लिए छोटे-छोटे शैक्षणिक कार्य करती हैं। ज़रा कल्पना कीजिए कि अगर उन्हें और अच्छे संसाधन दिए जाएँ तो वे कितना परिवर्तन ला सकती हैं!

यहाँ कुछ प्रश्न दिए गए हैं जिन्हें शिक्षक ख़ुद से पूछकर यह समझ सकते हैं कि क्या उनकी कक्षाएँ सभी बच्चों के लिए समावेशी हैं। इन्हें समावेशी कक्षाएँ बनाने के दिशा-निर्देशों के रूप में देखा जा सकता है।

पाठ्यक्रम के पहलू	शुरुआती क़दम	अगले क़दम
सीखने का माहौल (भौतिक)	• क्या कक्षा के अन्दर / पास किसी प्रकार की ध्यान बँटाने वाली रोशनी या शोर है? • क्या सभी बच्चे कक्षा की सामग्रियों और अन्य संसाधनों का आसानी से उपयोग कर सकते हैं?	• क्या कक्षा का स्थान सभी बच्चों के लिए आरामदायक है? • क्या ब्लैकबोर्ड और प्रदर्शित की गई अन्य चीज़ें स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं? • क्या फ़र्नीचर की व्यवस्था लचीली और सीखने के लिए अनुकूल है?
सीखने का माहौल (सामाजिक)	• क्या बच्चे पानी पीने या शौचालय जाने में ख़ुद को स्वतंत्र महसूस करते हैं? • क्या बच्चे कक्षा में प्रश्न पूछने और अपनी भावनाएँ साझा करने के लिए स्वतंत्र हैं?	• क्या बच्चों को हर रोज़ स्कूल आना अच्छा लगता है? • क्या उन्हें अपने स्कूल के पूरे दिन के बारे में आपसे और अपने दोस्तों से बात करना पसन्द है?
रोज़ की दिनचर्या / समय सारिणी	• क्या बच्चों को लम्बे समय तक बैठना पड़ता है? • क्या कभी आपको ऐसा लगता है कि बच्चों का मन काम में नहीं लग रहा है या वे थके हुए हैं?	• क्या प्रत्येक कालांश की अवधि बच्चों के लिए उपयुक्त है? • क्या कोई ऐसा कालांश है जो बच्चों को गतिविधि चुनने देता है? • क्या शौचालय और दोपहर के भोजन के लिए निर्धारित अन्तराल हैं?
विषय वस्तु (पाठ्य पुस्तकें और अन्य टीएलएम)	• क्या विषय वस्तु बच्चों के दैनिक जीवन और अनुभवों से सम्बन्धित है? • क्या विषय वस्तु के विषय और थीम ऐसी हैं जिनमें बच्चों को रुचि हो?	• क्या विषय वस्तु शिक्षार्थियों के सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ के अनुकूल है? • क्या आपने विषय वस्तु को इस तरह से संशोधित किया है कि यह सभी बच्चों के लिए सुलभ हो? • क्या विषय वस्तु बहु-संवेदी है, और अलग-अलग प्रारूपों में प्रस्तुत की गई है?
शिक्षणशास्त्र	• क्या आपकी शिक्षण पद्धति खेल आधारित है, जिसमें बच्चों के लिए अन्तःक्रिया की गुंजाइश है? • क्या बच्चों के पिछले अनुभवों को शामिल किया गया है और उन्हें महत्त्व दिया गया है? • क्या आप बच्चों की घरेलू भाषाओं का स्वागत करते हैं?	• क्या गतिविधियाँ विकास के सभी क्षेत्रों के लिए सन्तुलित हैं? • क्या आप शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन इस तरह से करते हैं जिससे वे बेहतर तरीक़े से सीख सकें?
आकलन	• क्या आप अलग-अलग परिस्थितियों में बच्चों का अवलोकन करते हैं? • बच्चे जो कुछ जानते हैं, क्या उनके पास उसे व्यक्त करने के अलग-अलग तरीक़े हैं?	• क्या पेपर-पेंसिल टेस्ट / परीक्षा या वर्कशीट पर कम ज़ोर दिया जाता है? • क्या विकास के सभी क्षेत्रों का सन्तुलित आकलन किया जाता है? • क्या आप आकलन से प्राप्त समझ के आधार पर अपनी पाठ योजना बनाते हैं?

समावेशी शिक्षा : एक अधिकार के रूप में

हमारे देश में शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम 2009 ने 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया है, जिसमें दिव्यांग बच्चे भी शामिल हैं।

इसके अलावा हमारे देश के दिव्यांगजन अधिकार (आरपीडब्ल्यूडी) अधिनियम 2016 में कहा गया है कि 6 से 18 वर्ष की आयु के बीच सन्दर्भित दिव्यांगता वाले किसी भी बच्चे को निःशुल्क शिक्षा का अधिकार है।

शिक्षा का अधिकार और दिव्यांगजन अधिकार, हमारे देश में ऐतिहासिक अधिनियम हैं। लेकिन पहुँच का मतलब समावेशन नहीं है। सम्भव है कि दिव्यांग बच्चों सहित बच्चों का एक विविध समूह एक ही स्कूल में जाता हो, और उन्हें एक ही समय सारिणी के अनुसार एक ही शिक्षक द्वारा एक ही पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता हो, लेकिन फिर भी ये बच्चे प्रतिदिन कई तरह के अलगावों का अनुभव करते हों।

> *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के अनुसार, "समावेशन शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है। सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित समूहों के विद्यार्थियों के सामने आने वाले शैक्षिक अन्तर को देखते हुए यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।"

समावेशी अभ्यास के लिए छोटे क़दम

जहाँ भी मनुष्य रहते हैं, वहाँ भाषाओं, परिवारों, संस्कृतियों, सीखने की ज़रूरतों और रुचियों की विविधता होती है। इसलिए समावेशी शिक्षा प्रदान करना मुख्यधारा के स्कूलों की ज़िम्मेदारी है। अगर हमारे स्कूल समावेशी नहीं हैं तो निश्चित रूप से समाज भी समावेशी नहीं हो सकता।

> "समावेशन – शामिल करने का काम; यह सुनिश्चित करना कि बच्चों के व्यक्तिगत सीखने के अन्तर की परवाह किए बिना, उनके पास स्कूल और कक्षा की सभी प्रक्रियाओं में भाग लेने के समान अवसर हैं।" *एनसीएफ-एफएस 2023, एनसीईआरटी, नई दिल्ली*

प्रमुख नीतिगत बदलाव इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे बुनियादी ढाँचे, पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों और अन्य संसाधन सामग्रियों, शिक्षण विधियों और आकलन पर ध्यान देते हैं। लेकिन समावेशन का मतलब केवल बड़े बदलाव करना, या अपने स्कूलों में उन बदलावों के शुरू होने का इन्तज़ार करना नहीं है। श्रीमती अनीता और श्रीमती बबीता, दोनों समावेशी शिक्षा, क्रॉस डिसेबिलिटी शिक्षा या विशेष शिक्षा में ख़ासतौर से प्रशिक्षित नहीं हैं, फिर भी वे विशेषज्ञों की सलाह लेकर अपने शिक्षण को अपने शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने की पूरी कोशिश करती हैं।

समावेशन के सिद्धान्त पर लम्बे समय से चर्चा होती रही है। समावेशी सक्रियता सामाजिक न्याय, नागरिक अधिकारों और कमज़ोर लोगों की आवाज़ के लिए बढ़ती माँग का परिणाम है (किन्सैला और सीनियर, 2008)। शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, और यहाँ तक कि अभिभावकों को भी संवेदनशील बनाया जाना चाहिए, और उन्हें समावेशन के लिए कार्य करने की जानकारी से लैस होना चाहिए।

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

सन्दर्भ

Government of India. (2009). The Right of Children to Free and Compulsory Education Act or The Right to Education Act, 2009. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/rte.pdf

Government of India. (2016). The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016. http://www.disabilityaffairs.gov.in/upload/uploadfiles/files/RPWD%20ACT%202016.pdf

Kinsella, W., & Senior, J. (2008). 'Developing inclusive schools: a systemic approach'. *International Journal of Inclusive Education,* 12(5–6), 651–665. https://doi.org/10.1080/13603110802377698

Ministry of Education. (2020). *National Education Policy 2020*. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

NCERT. (2022). *National Curriculum Framework for Foundational Stage 2022.* https://ncert.nic.in/pdf/NCF_for_Foundational_Stage_20_October_2022.pdf

जयना जगानी वर्तमान में मेरठ में एक परिवार द्वारा संचालित स्कूल की केजी विंग 'बुनियाद' में खेल-आधारित पाठ्यक्रम को शामिल करने का प्रयास कर रही हैं। वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की पूर्व छात्रा हैं, और उन्होंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के साथ अकादमिक एसोसिएट के रूप में काम किया है।

सम्पर्क : jaynajagani@gmail.com

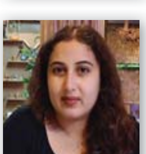

रीमा कौर अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु के स्कूल ऑफ़ कंटीन्यूइंग एजुकेशन एंड यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर (SCE–URC) में सहायक प्रोफ़ेसर हैं। वे प्रारम्भिक भाषा व साक्षरता और प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र में रुचि रखती हैं।

सम्पर्क : rima.kaur@azimpremjifoundation.org

बच्चों की शिक्षा पर सामाजिक–भावनात्मक समर्थन का प्रभाव

दीपिका झाला

जब विभिन्न पृष्ठभूमियों के बच्चे कक्षा में एक साथ पढ़ते हैं तो शिक्षक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि तब उन्हें बच्चों को एक दूसरे के प्रति समझ, करुणा और समानुभूति विकसित करना व आपसी भिन्नताओं का सम्मान करना भी सिखाना होता है।

चित्र 1: अपनी ड्राइंग और कविताओं से कक्षा को सजाते बच्चे

अज़ीम प्रेमजी स्कूल मंडावा, सिरोही राजस्थान में एक शिक्षिका के रूप में काम करते हुए बच्चों की शिक्षा पर सामाजिक-भावनात्मक चुनौतियों के प्रभाव के बारे में मेरी समझ गहरी हुई है। भारत की अर्थव्यवस्था तेज़ी से बढ़ रही है, लेकिन मैंने देखा है कि यहाँ पर जो वंचित बच्चे हैं, उनके जीवन की स्थिति काफ़ी ख़राब है। इन बच्चों को कई समस्याओं से निपटना पड़ता है। जैसे– परिवार की वित्तीय परिस्थितियों के कारण दुर्व्यवहार, जेंडर भेदभाव, कुपोषण, बाल श्रम, बीमारियाँ, अव्यवस्थित परिवार, सामाजिक दबाव, आदि। ये कठिनाइयाँ उन्हें उन अवसरों से वंचित करती हैं जो सभी बच्चों को समान रूप से बढ़ने और विकास के लिए मिलने चाहिए। इस लेख में, मैंने कक्षा को समावेशी बनाते हुए पढ़ाने के अपने अनुभवों का वर्णन किया है। इस वर्णन में हमारे स्कूल की कक्षा 8 की छात्रा इन्द्रा के सीखने-सिखाने की परिस्थितियों पर विशेष ज़ोर दिया गया है।

शिक्षक की भूमिका

एक समावेशी कक्षा में शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण होती है। शिक्षक केवल विषय का ज्ञान ही नहीं देते, बल्कि वे विद्यार्थियों के भावनात्मक कल्याण पर भी ध्यान देते हैं जिसे शैक्षिक अधिगम का अहम आधार माना जाता है। अकसर कक्षाओं में अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक परिवेश से आने वाले बच्चे एक साथ पढ़ते हैं, इसलिए वहाँ शिक्षक को उन भावनात्मक और सामाजिक चुनौतियों के प्रति संवेदनशील होना

चाहिए जो बच्चों के शैक्षिक प्रदर्शन में बाधा डालती हैं।

अलग-अलग क्षमताओं वाले बच्चों को एक ही कक्षा में रखना समावेशन नहीं कहा जा सकता। समावेशन का मतलब है, कक्षा में ऐसा माहौल बनाना जिसमें कक्षा का हर बच्चा सम्मानित व प्रभावशाली महसूस करे, और उसकी सीखने-सिखाने से सम्बन्धित सभी ज़रूरतों को पूरा किया जा सके। इसके लिए हमें प्रत्येक बच्चे के सामाजिक परिवेश, भावनात्मक स्थिति और पृष्ठभूमि की गहरी समझ होनी चाहिए। समावेशी कक्षा में काम करने से मेरी यह राय मज़बूत हुई है कि यदि हम यह नहीं समझते कि वे किस प्रकार के परिवार से आते हैं, उनकी ज़रूरतें और समस्याएँ क्या हैं, घर पर उन्हें किस प्रकार सहायता दी जाती है, और उनकी क्षमताएँ क्या हैं तो सिर्फ़ अकादमिक शिक्षा देना अपर्याप्त है।

वंचित पृष्ठभूमि से आने वाले बहुत-से बच्चों को कई तरह की व्यक्तिगत चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है। उनकी भावनात्मक परेशानी कई रूपों में सामने आ सकती है। जैसे— आत्मसम्मान की कमी, चिन्ता, सामाजिक मेलजोल से दूर रहना, सीखने की प्रेरणा की कमी, आदि।

आठवीं कक्षा की छात्रा इन्द्रा को भी इन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उसका परिवार किराए पर खेती करता है और कभी-कभी वह भी अपने माता-पिता के साथ खेतों में काम करने के लिए जाती है, ख़ासकर कटाई के दौरान। जब वह सातवीं कक्षा में थी तो उसे बुनियादी अक्षर पहचानने में मुश्किल होती थी। वह ऐसे अक्षरों को लेकर भ्रम में पड़ जाती थी जिनका प्रयोग कम होता है। अपने एकान्तप्रिय और अन्तर्मुखी स्वभाव के कारण वह अपने साथियों से बात करने में झिझकती थी। इनमें से कई बच्चों की आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि उससे बेहतर थी।

विश्वास को बढ़ावा देना

इन्द्रा और उसके जैसे दूसरे कई विद्यार्थियों के साथ काम करने से मैंने यह सीखा है कि अगर हम चाहते हैं कि वे बेहतर तरीक़े से सीखें तो हमें उनके साथ जुड़ने और तालमेल बनाने की ज़रूरत है। इन्द्रा का घर मेरे स्कूल के रास्ते में पड़ता था। चूँकि मैं उसकी क्लास टीचर भी थी, इसलिए मैं अकसर उसके घर जाती थी। उसके आसपास के माहौल, जैसे उसके मवेशी, खेती और दिन प्रतिदिन के काम, आदि के बारे में हमारी अनौपचारिक बातचीत होती थी। इसके कारण वह मुझसे खुलने लगी और मुझे व्यक्तिगत स्तर पर उससे जुड़ने का मौक़ा मिला। उसके घर जाने पर ही मैंने देखा कि उसका परिवार काफ़ी आर्थिक कठिनाइयों और दैनिक जीवन की चुनौतियों का सामना कर रहा है। धीरे-धीरे इन्द्रा मेरे साथ सहज हो गई, और स्कूल व सहपाठियों से जुड़ी बातें साझा करने लगी। इससे मुझे उसकी ज़रूरतों के हिसाब से उसके लिए अपनी शिक्षण योजना तैयार करने में मदद मिली, जिसकी शुरुआत अँग्रेज़ी भाषा की बुनियादी बातों से हुई। हमने अक्षर पहचान और ध्वनियों से शुरुआत की। इससे धीरे-धीरे उसका आत्मविश्वास और क्षमता बढ़ी।

साथियों का समर्थन और प्रोत्साहन

मैंने पूरी कक्षा को तीन ऐसे समूहों में विभाजित किया जिनमें

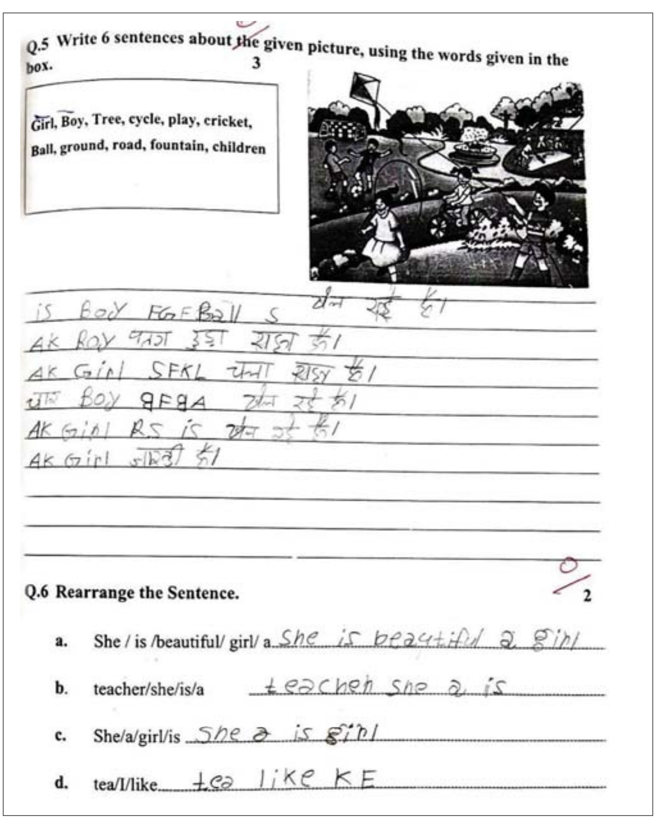

Q.5 Write 6 sentences about the given picture, using the words given in the box. 3

Girl, Boy, Tree, cycle, play, cricket, Ball, ground, road, fountain, children

Q.6 Rearrange the Sentence. 2

a. She / is /beautiful/ girl/ a. She is beautiful a girl

b. teacher/she/is/a teacheh she a is

c. She/a/girl/is She a is girl

d. tea/I/like tea like KE

चित्र 2 : इन्द्रा के काम का एक नमूना, अगस्त 2023

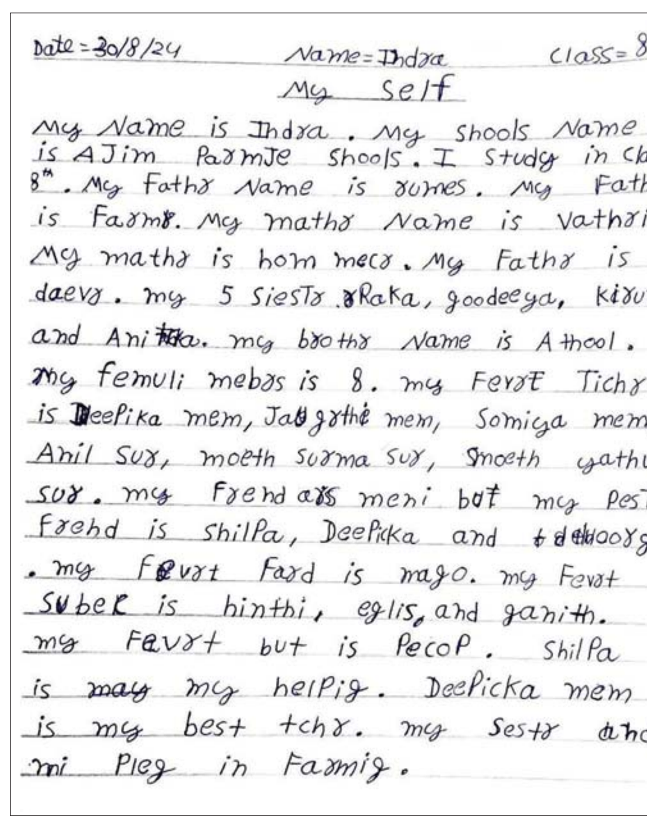

Date = 30/8/24 Name = Indra Class = 8th

My Self

My Name is Indra. My Shools Name is AJim ParmJe Shools. I Study in Class 8th. My Fathr Name is rumes. My Fathr is Farmr. My mathr Name is Vathri. My mathr is hom mecr. My Fathr is daevr. my 5 Siestr Raka, goodeeya, kirun and Anita. my brothr Name is Athool. my femuli mebrs is 8. my Ferst Tichr is Deepika mem, Jagrthe mem, Somiya mem, Anil Sur, moeth Surma Sur, Smoeth yathu Sur. my Frend are meni but my PesT Frend is ShilPa, Deepicka and ... my Fevrt Fard is mago. my Fevrt Subek is hinthi, eglis, and ganith. my Fevrt but is PecoP. ShilPa is my helPig. DeePicka mem is my best tchr. my Sestr and mi Pleg in Farmig.

चित्र 3 : इन्द्रा के काम का एक नमूना, अगस्त 2024

अलग-अलग क्षमता वाले बच्चे थे, ताकि वे विभिन्न गतिविधियों और साथियों से सीख सकें। हर समूह में ग्रामीण और शहरी पृष्ठभूमि, दोनों जेंडर और अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चे थे। इन्द्रा को शाहिस्ता और शौर्या का भरपूर सहयोग मिला। ये दोनों एल 3 (स्तर-3) की छात्राएँ हैं और शहरी परिवेश से आई हैं। इन दोनों ने उसे पढ़ने-लिखने का अभ्यास करने में मदद की जो अँग्रेज़ी के पीरियड के बाद भी जारी रही।

इन्द्रा के उदाहरण से पता चलता है कि सीखने की प्रक्रिया में भावनात्मक समर्थन का कितना महत्त्व है। जब बच्चों को लगता है कि उन्हें प्यार मिल रहा है, और उनका ध्यान रखा जा रहा है तब उनका शैक्षिक प्रदर्शन या दूसरे कारक चाहे कुछ भी हों, वे सीखने की प्रक्रिया में शामिल होने के लिए अधिक इच्छुक होने लगते हैं। मैंने इन्द्रा को कक्षा में बोलने के लिए प्रोत्साहित किया, भले ही वह एक बार में सिर्फ़ एक शब्द या एक वाक्य ही क्यों न बोले। इससे उसका आत्मविश्वास बढ़ा। जब वह जवाब देने या कक्षा की चर्चाओं में भाग लेने के लिए अपना हाथ उठाती तो दूसरे सभी बच्चे उसे प्रोत्साहित करते। वे चाहते थे कि इन्द्रा उत्तर देने के लिए आगे आए। इतना ही नहीं, वे ताली बजाकर उसके प्रयासों की सराहना भी करते। कक्षा में उसे उसके नाम से पुकारना, उसका उदाहरण देना, कुछ अवधारणाएँ सिखाते समय उससे कुछ ऐसे बुनियादी सवाल पूछना जिनका जवाब वह आत्मविश्वास के साथ दे सके, ऐसे छोटे-छोटे प्रयासों से उसके आत्मसम्मान को बढ़ावा मिला। किसी भी कार्य को पूरा करने के बाद उसके अन्दर आत्मविश्वास और उपलब्धि की जो भावना उत्पन्न होती, वह कितनी भी छोटी क्यों न हो उसके शैक्षिक विकास के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण होती थी।

कक्षा की कार्यनीतियाँ

शिक्षकों के रूप में, हमें हमेशा ही अपनी प्रेरणा के स्तर को ऊँचा उठाए रखने की आवश्यकता होती है। यह तब ज़्यादा ज़रूरी होता है जब हम उन विद्यार्थियों की सहायता कर रहे होते हैं जिन्हें सीखने में कठिनाई होती है। सकारात्मक बदलाव लाने की प्रक्रिया के लिए यह ज़रूरी है कि हम अपने और विद्यार्थियों के प्रयासों पर भरोसा रखें। एक शिक्षक के रूप में, मैं यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती हूँ कि मेरी शिक्षण विधियाँ सभी विद्यार्थियों को सीखने में मदद करें। ख़ासकर चुनौतियों से भरे सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों की। यहाँ कुछ ऐसे तरीक़े दिए गए हैं जो मेरे लिहाज़ से मददगार साबित हुए हैं :

- स्वस्थ माहौल बनाना : स्वस्थ और भावनात्मक रूप से सुरक्षित माहौल विद्यार्थियों को असफलता या आलोचना से डरे बिना उन्हें सीखने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता है।

> **"जब हम समावेशी कक्षाएँ बनाकर हर बच्चे की विविधता और विशिष्टता का उत्सव मनाते हैं तो हमारी यह ज़िम्मेदारी भी होती है कि हम एक ऐसा माहौल बनाएँ जहाँ सभी बच्चे सीख सकें, भले ही उनकी पृष्ठभूमि कुछ भी हो।"**

- विशिष्ट आवश्यकताओं को समझना : इन्द्रा के मामले में यह ज़रूरी था कि भाषा सीखने के लिए एकदम बुनियादी बातों से शुरुआत की जाए, और जैसे-जैसे उसका आत्मविश्वास बढ़े वैसे-वैसे कठिनाई के स्तर को बढ़ाया जाए।
- सुदृढ़ीकरण : इन्द्रा के सहपाठी, शिक्षक उसकी हर उपलब्धि का जश्न मनाते थे, चाहे वह कितनी भी छोटी क्यों न हो। हर छोटे प्रयत्न की सराहना और पहचान करने से बच्चा प्रेरित होता है।
- साथियों का समर्थन : अब इन्द्रा बात करने में संकोच नहीं करती। उसे अपने सहपाठियों के साथ बातचीत करना अच्छा लगता है। किसी बड़े शब्द को पढ़ने या वाक्य बनाने में अगर उसे सहायता की आवश्यकता होती है तो वह अपने सहपाठियों से पूछ लेती है। साथियों के साथ सीखने से न केवल सामाजिक कौशल विकसित होते हैं, बल्कि सीखने में भी सहायता मिलती है।
- माता-पिता के साथ सम्प्रेषण : माता-पिता के साथ बातचीत करने से विद्यार्थियों को सीखने में काफ़ी मदद मिलती है।

शिक्षकों के लिए एक ऐसी कक्षा संचालित करना बेहद चुनौतीपूर्ण होता है जिसमें हर विद्यार्थी अपनी सीखने की क्षमता के अनुसार सीख सके, और जिस स्तर पर वह है उससे कुछ आगे बढ़ सके।

जब इन्द्रा जैसे विद्यार्थी सीखते हैं, शिक्षकों को बहुत ख़ुशी होती है। अपने विद्यार्थी को वर्णमाला के साथ जूझते, छोटे-छोटे अंश पढ़ते और कक्षा में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए देखकर शिक्षक को सन्तोष तो होता ही है, उनके मन में आशा की यह भावना भी जागती है कि सभी विद्यार्थी सीख सकते हैं। जब हम समावेशी कक्षाएँ बनाकर हर बच्चे की विविधता और विशिष्टता का जश्न मनाते हैं तो हमारी यह ज़िम्मेदारी भी होती है कि हम ऐसा माहौल बनाएँ जहाँ सभी बच्चे सीख सकें, भले ही उनकी पृष्ठभूमि कुछ भी हो। इसलिए विशिष्ट चुनौतियों को समझने, भावनात्मक समर्थन प्रदान करने और विश्वास का निर्माण करने के लिए अटूट प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। यह प्रतिबद्धता न केवल बच्चों के सीखने का समर्थन करेगी, बल्कि उनके कल्याण में भी योगदान देगी।

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

दीपिका झाला राजस्थान के सिरोही में अज़ीम प्रेमजी स्कूल में शिक्षिका हैं। आपको 12 साल के शिक्षण और शोध का अनुभव है। आपने राजस्थान के कई कॉलेजों और स्कूलों में पढ़ाया है।

सम्पर्क : deepika.jhala@azimpremjifoundation.org

सीखने पर हक़ तो सबका बराबर है

विष्णु गोपाल

कोई खेल, कोई काम, कोई प्रक्रिया अस्मिताओं के आधार पर बँटे, यह अनुचित है। यह जानते हुए भी, स्कूलों में अकसर इस तरह के उदाहरण दिखते हैं। समावेशन का यह बड़ा मुद्दा है। इसका असर बच्चों के सीखने पर भी ख़ूब दिखता है। इन मुद्दों को पहचानना, दूर करने के प्रयास करना, समावेशन की तरफ़ बढ़ा हुआ पहला क़दम है।

खेल, आमतौर पर लड़कों का विषय माना जाता रहा है। लड़कियाँ, लड़कों के साथ नहीं खेलतीं, और न ही उन्हें खेलने दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार, खाना बनाना, खाना परोसना, बर्तन साफ़ करना, आदि लड़कियों के काम माने जाते रहे हैं। यदि लड़के ऐसे काम करते भी हैं तो उनका मज़ाक़ उड़ाया जाता है। और फिर यदि ऐसे काम लड़कों के एक ऐसे समूह को करने हों जिसमें आदिवासी, दलित और सामान्य वर्ग के बच्चे हों तो मसला और पेचीदा हो जाता है। एक तो लड़के खाना बनाने का काम नहीं करते; दूसरा, यदि वे इसके लिए तैयार हो भी जाते हैं तब लड़कों के समूह में भी यह सवाल उठ आता है कि दलित या आदिवासी लड़के के साथ सामान्य लड़के खाना बनाने से ही मना कर देते हैं। एक बेहतर लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के लिए स्कूलों की ये ज़िम्मेदारी है कि संवैधानिक मूल्यों और मान्यताओं का पालन करते हुए इन मसलों पर काम हो। इन्हीं मूल्यों और मान्यताओं में से एक मुद्दा समावेशन का है।

ग्रामीण शिक्षा केन्द्र (जीएसके) राजस्थान के सवाई माधोपुर और टोंक ज़िले में समुदाय के साथ मिलकर शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र को और अधिक अनुकूल बनाने के लिए काम कर रहा है। केन्द्र का एक मुख्य कार्यक्रम 'उदय', उन सामुदायिक पाठशालाओं के इर्दगिर्द केन्द्रित है जिन्हें समुदाय और दूसरे विद्यालयों को यह दिखाने के लिए स्थापित किया गया था कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा क्या है।

ग्रामीण शिक्षा केन्द्र द्वारा संचालित दो पाठशालाओं में समावेशन को लेकर काम किया जा रहा है। पाठशालाओं में समावेशन के इस काम में व्यवस्था विषयक सुधारों के साथ-साथ, बच्चों से बातचीत करने, सभी समुदायों के बच्चों व शिक्षकों की स्कूल असेंबली में बराबर भागीदारी सुनिश्चित करने, कक्षा की बैठक व्यवस्था, वहाँ की दैनिक गतिविधियों, आदि पर लगातार काम किया जाता है। इन सभी प्रयासों का परिणाम धीरे-धीरे दिखाई देता है। हमारा अवलोकन यह भी रहा है कि साथ-साथ खेलना, मिलकर खाना बनाना और खाना जैसी कुछ सामूहिक गतिविधियाँ समावेशन की गति को तेज़ कर देती हैं।

> **भोजन परोसने, खाने-खिलाने और बर्तन साफ़ करने के काम में जाति और वर्ग के बीच की दूरियाँ कब ख़त्म हो गईं, बच्चों को पता ही नहीं चला।**

चित्र 1 : स्कूल में रोटी बनाने की गतिविधि में शामिल लड़के

चित्र 2 : मिलकर खाना बनाने की गतिविधि में शामिल लड़कियाँ

चित्र 3 : खेल के दौरान ऊपर गई गेंद को देखते विद्यार्थी

साथ–साथ खेलने की शुरुआत

साथ खेलने की शुरुआत कैरम बोर्ड, लूडो जैसे इंडोर खेलों से की गई। जब लड़के और लड़कियों को खेलने की सामग्री दी गई तो हमने देखा कि लड़कियों ने लड़कियों को ही अपना साथी बनाया और लड़कों ने लड़कों को। अगले दिन, लड़के–लड़कियों को ज़बरन एक साथ बैठा देने की बजाय मैंने पहले ही उनके उपसमूह बना दिए। इन उपसमूहों में लड़के और लड़कियाँ, दोनों ही शामिल थे, लेकिन यहाँ एक नई समस्या आ खड़ी हुई। आदिवासी और दलित बच्चों को किसी ने भी साथ नहीं बिठाया, फिर चाहे वे लड़के हों या लड़कियाँ। जब कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया कि हम दलितों और नायकों के साथ नहीं खेलेंगे, चाहे वे लड़के हों या लड़कियाँ।

ऐसा ही लंच करते और नल से पानी पीते समय देखा गया। चूँकि नल एक ही था, इसलिए सामान्य वर्ग से आने वाले बच्चे पानी पीने से पहले नल को कई बार धोते। लड़कियों में तो ये भावना कुछ ज़्यादा ही थी। और हो भी क्यों नहीं, शुद्धता और अस्मिता का पाठ उन्हें अधिक जो सिखाया जाता है। हर किसी में जाति और लिंग के अनुसार श्रेष्ठता का भाव था। पिछड़े और दलित वर्ग के बच्चे किसी अज्ञात भय या अनुभवों के चलते सबसे दूरी बनाकर रखते। मेरे कहने पर भी वे साथ नहीं आते, और मुझसे भी दूरी बनाकर रखते। मुझे लगा कि समावेशन की शुरुआत मुझे ख़ुद से करनी होगी और यह भी कि, साथी शिक्षकों को भी इससे जोड़ने की ज़रूरत है। मैंने यह भी सोचा कि असेंबली को भी फ़र्क़ तरह से करने की ज़रूरत है। मेरी इस बात को साथी शिक्षकों ने ठीक से समझा।

असेंबली में परिवर्तन

असेंबली में परिवर्तन करते हुए, मैंने बच्चों को क़तार की बजाए गोल घेरे में बैठाना शुरू किया। अब कोई किसी के आगे–पीछे न होकर बराबरी से बैठता। मैं भी बच्चों के बीच ही बैठता। बच्चे मुझे अपने पास बैठने के लिए बुलाते। नहीं जाने पर, वे मेरे पास आकर बैठने के लिए झगड़ते। इसलिए मैं रोज़ जगह बदलता, और सभी वर्ग के लड़के–लड़कियों के साथ बारी–बारी बैठता, उनसे बात करता, और उनके साथ गाता। इससे मुझे उनके बीच चल रही बातचीत में शामिल होने का अवसर मिलता।

सामाजिक मौक़ों पर भागीदारी

एक दिन मुझे पता चला कि मेरे एक दलित विद्यार्थी के घर में विवाह कार्यक्रम है। मैंने वहाँ जाने का निर्णय लिया, हालाँकि उसके माता–पिता ने मुझे निमंत्रण ही नहीं दिया था। पर मैं इस अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। इसलिए मैंने बच्चे से कहा, "आपके घर में शादी है, और मुझे बुलाया भी नहीं!"

बच्चे ने मेरी तरफ़ देखा, और बिना कुछ कहे घर चला गया। थोड़ी देर में उसके पापा आए। उन्होंने बड़े ही विनम्र भाव से माफ़ी माँगते हुए कहा, "गुरुजी, आप तो जानते हैं हम कौन हैं! बस इसी डर से आपको निमंत्रण देने की हिम्मत नहीं हुई।"

मैंने फ़ौरन बात को सँभालते हुए कहा, "अब लेने आए हो या मना करने?" वह फिर सकपकाए, पर ख़ुद को सँभालते हुए उन्होंने कहा, "चलिए गुरुजी!" मैं जाने लगा, पर मेरे साथी शिक्षक हिले तक नहीं। हालाँकि प्रशिक्षणों और भाषणों में सभी

एक राय से समावेशन का समर्थन करते हैं, पर यहाँ व्यवहारिक मामले ने उन्हें रोक दिया। शिक्षा की नज़र से उनका साथ आना ज़रूरी था। मेरे ज़ोर देने पर ही वे साथ चले। घर स्कूल के सामने ही था तो पहुँचने में वक़्त नहीं लगा। सबने हमें पहचान लिया और नमस्ते करने लगे। हमारे बैठने-खाने के लिए अलग दरी और बर्तनों की व्यवस्था होने लगी। लेकिन मैंने साफ़ कह दिया कि खाना खाएँगे तो सबके साथ और सबकी तरह, वरना नहीं खाएँगे। उन्हें मेरी बात माननी पड़ी, और हमने सबके साथ बैठकर भोजन-पानी किया।

इस घटना का काफ़ी असर हुआ। अगले दिन से दलित बच्चे ख़ुद को और अधिक सहज महसूस करने लगे। यह देखकर अन्य वर्गों के कुछ बच्चों को काफ़ी अजीब लगा। हमने भी एक सत्र चर्चा के लिए रखा, और इस मुद्दे पर बातचीत की। बच्चों पर जाति, वर्ण व्यवस्था का रंग अभी इतना गहरा नहीं चढ़ा था कि वे विवेक और तर्क को अनदेखा कर देते। साथ बैठने, पढ़ने और बात करने तक बात बन रही थी। इसके लिए नियमित चर्चाएँ होतीं। इनमें शाकाहारी और माँसाहारी भोजन के उपयोग व उससे जुड़ी मान्यताएँ चर्चा का विषय बनतीं। कभी-कभी तो कर्म, जाति, व्यवसाय, भोजन और सफ़ाई जैसे तर्क आपस में गड्ड मड्ड हो जाते, और फिर हमें हर मुद्दे पर अलग चर्चा आयोजित करनी होती। हालाँकि छूना, धक्का-मुक्की करना, साथ बैठकर भोजन करना अभी भी नहीं हो रहा था। इसके लिए कुछ और खेलों के बारे में हमने सोचा।

नमस्ते-नमस्ते का खेल

इस खेल में सारे बच्चे एक गोल घेरे में बैठ जाते हैं। एक बच्चा घेरे के बाहर रहता है, और किसी दूसरे बच्चे की पीठ को छूकर भागता है। जिस बच्चे की पीठ को छुआ जाता है वह बच्चा विपरीत दिशा में भागते हुए उसे सामने से मिलता है। यहाँ वे दोनों हाथ मिलाकर नमस्ते करते हैं, और ख़ाली हुए स्थान पर बैठने के लिए भागते हैं। जो बच्चा देर से पहुँचता है ज़ाहिर ही है कि वह बैठ नहीं पाता और तब उसे यही प्रक्रिया दोहरानी होती है। इस खेल के आख़िर में हमने देखा कि सभी लड़के-लड़कियों ने एक दूसरे को छुआ और हाथ मिलाया। पहले पहुँचने की चाह में वे सबकुछ भूल गए। बाद में यदि किसी को याद भी आया तो उसने खेल से मिले आनन्द को ही महत्त्व दिया। हमने, चूहा दौड़ बिल्ली आई, कोड़ा है जमालशाही, और खो-खो जैसे और भी कई खेल खेले। खेल खेलते-खेलते बच्चों में सफल होने, जीतने और ख़ुद को बेहतर साबित करने की चाह मज़बूत होने लगी। वे सबकुछ भूलकर अपने कौशलों पर काम करने लगे। बेहतर प्रदर्शन के लिए वे अच्छी टीम बनाने लगे। फिर उसमें दलित, आदिवासी हो या कोई और, उन्हें इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता।

साथ बैठकर खाना

माहौल पहले से कुछ बेहतर हुआ था, पर लंच के समय कुछ ही बच्चे अपने घर से खाना लेकर आते थे। स्कूल के पास वाले कुछ बच्चे खाना खाने घर चले जाते तो कुछ खाना लेकर ही नहीं आते थे। हमने सभी को टिफ़िन लेकर आने के लिए कहा। जो बच्चे खाना नहीं ला पाते थे उनके माता-पिता से बात की, लेकिन बात नहीं बनी। मैं भी अपना लंच बच्चों के साथ करने लगा। हमने खाना शेयर करना शुरू किया। मैंने तय किया कि मैं सबके टिफ़िन से एक निवाला खाऊँगा। मेरा पेट तो इसी से भर जाता, और मैं अपना टिफ़िन उन बच्चों को दे देता जो लंच नहीं ला पाते थे। इसे देख कुछ बच्चे अतिरिक्त रोटियाँ लाने लगे। इस तरह, साथ लंच करने और शेयर करने से अलग-अलग समाजों से आने वाले बच्चों के बीच समायोजन होने लगा।

इसी दौरान, हमने खेलों को नियमित करने के साथ-साथ किचन गार्डन और कुकिंग क्लब चालू किए। बच्चे स्कूल की ख़ाली जगह पर किचन गार्डन बनाने के लिए खाद, बीज, दवाएँ, औज़ार, आदि अपने घरों से लाते और सब मिलकर उसे तैयार करते। गार्डन के फल और सब्ज़ियाँ सबके लिए उपलब्ध थीं। ज़्यादा पैदावार होने पर बच्चे उन्हें घर भी ले जा सकते थे। वहीं से हमने उनकी खान पान की आदतों पर काम करते हुए कुकिंग क्लब का संचालन किया। यही वह समय था जब बच्चों ने लकड़ी-चूल्हा, बर्तन, और सलाद से लेकर खाना पकाने तक का काम सीखते हुए अपने हाथ में लिया।

भोजन परोसने, खाने-खिलाने और बर्तन साफ़ करने के काम में जाति और वर्ग के बीच की दूरियाँ कब ख़त्म हो गईं, बच्चों को पता ही नहीं चला। बच्चों को सहज देखते हुए माता-पिता ने भी उन्हें डाँटना बन्द कर दिया। कभी कभार अभिभावक हमसे शिकायत करते, पर उनकी शिकायत में दृढ़ता न होकर सिर्फ़ रस्म अदायगी होती। हम भी उनसे इतना ही कहते कि ज़माना बदल रहा है। आपने तो अपना जीवन जी लिया, इनको बहुत आगे जाना है।

माता-पिता स्कूल व्यवस्था को तो स्वीकार कर पा रहे थे, लेकिन उनके घरों के नियम वैसे ही बने रहे। वहाँ वे बदलाव के लिए तैयार नहीं थे। ये हमारे दायरे के बाहर होने के कारण हमने स्कूल के माध्यम से नई पीढ़ी के साथ काम करना जारी रखा।

> **“ मुझे लगा कि समावेशन की शुरुआत मुझे ख़ुद से करनी होगी और यह भी कि, साथी शिक्षकों को भी इससे जोड़ने की ज़रूरत है। मैंने यह भी सोचा कि असेंबली को भी फ़र्क़ तरह से करने की ज़रूरत है। ”**

कुछ अन्य प्रयास

दिन प्रतिदिन की गतिविधियों में साथ पढ़ना, साथ खाना और खेलना सामान्य बात हो गई थी। बच्चे अब बच्चे नहीं रहे, वे किशोरावस्था की तरफ़ बढ़ रहे थे। वे अपने-अपने आयु वर्ग, जेंडर के आधार पर विभिन्न खेल मंचों एवं प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेने के लिए जाने लगे। हालाँकि हम इन प्रतिस्पर्धाओं में मिली जुली टीम कभी नहीं भेज पाए।

समावेशन के सन्दर्भ में इन स्कूलों में कुछ बेहतर इसलिए भी हो पाया क्योंकि नियमित होने वाले अनुभवों को समायोजित और विश्लेषित करते हुए हम ज़रूरी बदलाव करते रहे। ऐसा ही एक बदलाव तब किया गया जब स्कूल के अच्छे परिणामों के चलते विद्यालय में लड़कों की संख्या बढ़ने लगी। प्रभावशाली लोग अपने बच्चों के दाख़िले के लिए अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने लगे। तब हमने स्कूल प्रबन्धन समिति और समुदाय की बैठकें आयोजित कर सबकी सहमति से विद्यालय में 50 प्रतिशत सीटें बालिकाओं के लिए सुरक्षित कर दीं। इतना ही नहीं, हमने 500 मीटर के दायरे में आने वाले सभी बालक-बालिकाओं को दाख़िला देने का निर्णय भी लिया। इससे विद्यालय के पास की बस्ती के मुस्लिम, घुमन्तु और दलित समुदाय के बच्चों का 100 प्रतिशत दाख़िला सुनिश्चित हुआ।

पीयर लर्निंग और मल्टी-ग्रेड मल्टी-लेवल शिक्षण पद्धतियों का उपयोग कर हमने समायोजन हेतु बच्चों को एक दूसरे से मदद लेने, मिलकर सीखने और कार्य करने के अवसरों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। इससे बच्चों की शिक्षकों पर निर्भरता कम हो गई। वे एक दूसरे का सहयोग लेते हुए बेहतर समझ और जुड़ाव स्थापित कर पा रहे थे। आपसी विवादों को भी सामूहिक विचार विमर्श कर सुलझाने के लिए छात्र पंचायत का गठन किया गया। इससे बच्चों को लोकतांत्रिक तरीक़े से अपनी व्यवस्था बनाने और चलाने के व्यवहारिक अनुभव मिलने लगे।

चित्र 4 : सब भेदभाव भूलकर खेल में मशग़ूल बच्चे

विष्णु गोपाल ग्रामीण शिक्षा केन्द्र के निदेशक हैं। आपके पास स्कूल प्रबन्धन और स्कूलों में शैक्षिक कार्यक्रमों को चलाने का बृहत् अनुभव है। आपकी खेलों में ख़ासी रुचि है जो आपके काम से बख़ूबी जुड़ती है।

सम्पर्क : vishnu.gopal@graminshiksha.org.in

बच्चे जिन्हें ज़रूरत है अधिक देखभाल और अवसरों की

सुजाता रावी और दसन्ना मरेड्डी

3 से 6 साल के बच्चे अलग-अलग जगहों पर साथ में खेलते और सीखते हैं। ख़ासकर प्री-स्कूल और अपने आस पड़ोस में। यही वो समय है जब वे सकारात्मक दृष्टिकोण से एक दूसरे के बीच के अन्तर को समझने का प्रयास करते हैं।

जब हमने पहली बार तेलंगाना के संगारेड्डी ज़िले में आँगनवाड़ियों के साथ काम करना शुरू किया, हमने कक्षा में बहिष्करण के कई उदाहरण देखे। विशेषकर, उन बच्चों के सम्बन्ध में जिनके सीखने और संवर्धन की गति धीमी होती थी। ये बच्चे अकसर अकेले बैठे रहते थे, उन्हें अपना काम पूरा करने में परेशानी होती थी, उनका ध्यान बड़ी आसानी से बँट जाता था, और उनमें इधर-उधर घूमने की प्रवृत्ति दिखाई देती थी। आँगनवाड़ी शिक्षकों को उन्हें गतिविधियों में शामिल करना मुश्किल लगता था क्योंकि इसमें अधिक समय और प्रयास लगता था। दूसरे बच्चे भी उनके साथ खेलने में रुचि नहीं रखते थे। इससे इन बच्चों के लिए नियमित रूप से आँगनवाड़ी आना और सीखने में रुचि बनाए रखना मुश्किल हो गया। हालाँकि ऐसे बहुत कम बच्चे थे जिन्हें अतिरिक्त मदद की ज़रूरत थी, लेकिन अलग रखे जाने की वजह से उन्हें अपने बारे में बुरा महसूस होता, उनके आत्मसम्मान को चोट पहुँचती, और सीखने में उनकी रुचि कम हो जाती थी। वे कभी-कभी दूसरों का ध्यान भटकाकर या उनके साथ मारपीट करके ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करते थे। उपेक्षित और अकेला महसूस करने से न केवल बच्चे को समस्या होती है, बल्कि कक्षा का प्रबन्धन करने में शिक्षक को भी कठिनाई होती है।

विकास के सिद्धान्तों के बारे में जागरूकता

इस समस्या से निपटने के लिए, हमने अपने आँगनवाड़ी शिक्षकों को इस बारे में जागरूक करना शुरू किया कि बच्चे कैसे व्यवहार करते हैं; कक्षा में सभी को शामिल करना कितना महत्त्वपूर्ण है; और माता-पिता को भी इन चीज़ों के बारे में क्यों सीखना चाहिए। हमने कार्यशालाएँ आयोजित कीं। यहाँ हमने ख़ास मामलों और स्थितियों का उदाहरण दिया, और शिक्षकों से पूछा कि वे कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि सभी बच्चे, विशेषतौर पर वे जिन्हें अतिरिक्त मदद की ज़रूरत है, शामिल हो सकें। जब हम आँगनवाड़ियों में गए तो हमने उन शिक्षकों की भी मदद की जो अपनी कक्षाओं में सभी बच्चों को शामिल करने के लिए काम कर रहे थे। शिक्षकों को अपनी कक्षाओं में समावेशन के अर्थ को समझने और उसे अमल में लाने में कुछ समय लगा।

जब शिक्षक बाल विकास के सिद्धान्तों से परिचित हो गए तब उन्होंने महसूस किया कि प्रत्येक बच्चा अपनी गति से विकसित होता है, और सीखता है। उन्होंने यह भी समझा कि असल में घर के माहौल का बच्चे के सीखने के तरीक़े पर प्रभाव पड़ सकता है। किसी बच्चे को 'धीमी गति से सीखने वाला' कहने की बजाय, उसकी मदद करना बेहतर होता है। ऐसा करने के लिए शिक्षकों को इसके कारणों का विश्लेषण करना होगा, और उस बच्चे की पृष्ठभूमि को समझना होगा।

शिक्षकों ने बच्चों के विकासात्मक पड़ावों (डिवैलपमेंटल माइलस्टोन) और आयु के बारे में अपनी जागरूकता बढ़ाई। उन्होंने बच्चों के लिए विकासात्मक रूप से उपयुक्त अवसरों को भी समझा जिससे उन्हें प्रत्येक बच्चे की विकासात्मक प्रगति को समझने में मदद मिली। इस समझ के साथ शिक्षक उन बच्चों की पहचान कर सके जिन्हें सीखने और विकसित होने के लिए अधिक समय और अवसरों की आवश्यकता होती है। शिक्षकों ने अपने शिक्षण के तरीक़ों को बेहतर किया, और साथ ही वे यह भी सुनिश्चित करने लगे कि इन बच्चों को सभी गतिविधियों से सीखने के पर्याप्त अवसर मिलें। मसलन, एक संवाद गतिविधि में यदि कोई बच्चा अकेला बैठा है, और समूह गतिविधि के दौरान बात नहीं कर रहा है तो शिक्षिका सुनिश्चित करती हैं कि वे बच्चे पर नज़र रखें, और बच्चा दूसरे बच्चों की प्रतिक्रियाओं

चित्र 1 : शिक्षिका की मदद से किताब पढ़ने की कोशिश करते बच्चे

चित्र 2 : खेल के दौरान अपनी बारी का इन्तज़ार करते बच्चे

> एक संवाद गतिविधि में यदि कोई बच्चा अकेला बैठा है, और समूह गतिविधि के दौरान बात नहीं कर रहा है तो शिक्षिका सुनिश्चित करती हैं कि वे बच्चे पर नज़र रखें, और बच्चा दूसरे बच्चों की प्रतिक्रियाओं को सुने।

को सुने। कभी-कभी वे इन बच्चों से पूछती हैं कि क्या वे कोई प्रश्न पूछना चाहते हैं, या अपनी ओर से कुछ कहना चाहते हैं। फिर वे बच्चे को जवाब देने के लिए कुछ समय देती हैं। बिना कोई दबाव डाले वे उसे ऐसे अवसर देती रहती हैं। धीरे-धीरे बच्चा समूह के साथ बैठना और बातचीत में भाग लेना शुरू कर देता है।

जब शिक्षक बच्चों के घर जाते हैं, या हर महीने ईसीसीई दिवस पर अभिभावकों के साथ बैठक करते हैं तो वे उन्हें इस बात की जानकारी देते हैं कि घर के माहौल को प्रेरक बनाने, और बच्चे को सीखने व विकसित होने में मदद करने के लिए उन्हें घर पर किस प्रकार के बदलाव करने चाहिए।

इस लेख में हम दो केस स्टडी प्रस्तुत कर रहे हैं, जहाँ आँगनवाड़ी शिक्षकों ने उन बच्चों के लिए समावेशी पद्धतियों का प्रयोग किया जिन्हें अधिक मदद की ज़रूरत थी।

केस स्टडी 1

जब 2 साल के एक बच्चे के माता-पिता को पता चला कि उनके बच्चे को विशेष ध्यान और अवसरों की आवश्यकता है क्योंकि उसे अपने रिफ़्लैक्सेस और अपनी बात कहने, अपनी बातचीत (expressive communication) को नियंत्रित करने, और अपनी बात को कहने में मुश्किल होती है। वह चीज़ों को छीनता है, और दूसरों को धक्का दे देता है। माता-पिता अपने बच्चे को किसी प्री-स्कूल में भर्ती कराना चाहते थे, जहाँ वह खेल सके और दूसरे बच्चों के साथ बातचीत कर सके, लेकिन बच्चे की स्थिति के बारे में जानने के बाद कोई भी निजी प्री-स्कूल उसे भर्ती करने के लिए तैयार नहीं था, जबकि उसकी माँ स्कूल में शिक्षिका के साथ रहने के लिए तैयार थीं। फिर माँ ने नज़दीक की एक आँगनवाड़ी शिक्षिका से सम्पर्क किया, और उन्हें आश्वासन दिया कि वह इस बात का ध्यान रखेंगी कि उनका बच्चा दूसरे बच्चों को चोट न पहुँचाए। शिक्षिका ने एकीकृत बाल विकास सेवा पर्यवेक्षक से बात की। उन्होंने स्थिति को समझा, और उसे भर्ती कर लिया ताकि वह दूसरे बच्चों के साथ खेल सके और सीख सके।

शुरू में, इस बच्चे को अपनी दैनिक गतिविधियों में शामिल करने में शिक्षिका और दूसरे बच्चों को मुश्किल हुई। लेकिन फिर उन्होंने इस बात पर ध्यान दिया कि बच्चा कैसे व्यवहार करता है, और आँगनवाड़ी सहायिका व बच्चे की माँ की मदद से उन्होंने उसे धैर्यपूर्वक हर गतिविधि में शामिल करना शुरू कर दिया। पहले बच्चे की माँ को हर समय उसका हाथ थामे रहना पड़ता था। धीरे-धीरे, दूसरे बच्चों को देखकर यह बच्चा भी उनके साथ खेलने और बात करने लगा। अब वह दूसरे बच्चों के साथ कॉर्नर प्ले में भाग लेता है, आकृतियों व रंगों की पहचान करता है, अपनी ज़रूरतों को बताता है, और दूसरे बच्चों को उनके नाम से पहचानने लगा है।

उपरोक्त उदाहरण में, हालाँकि शिक्षिका अलग तरह का व्यवहार करने वाले बच्चों की मदद करने की विशेषज्ञ नहीं थीं, फिर भी उन्होंने अन्य जानकारों की सलाह से अपनी ओर से पूरी कोशिश की। उन्होंने पहले इस बच्चे को दूसरे बच्चों के साथ शामिल करने की कोशिश की, लेकिन उन्हें एहसास हुआ कि इस तरह तो वे समय का सही प्रबन्धन नहीं कर पाएँगी क्योंकि बच्चे पर अतिरिक्त ध्यान देने की ज़रूरत है। ऐसे में, उसे काम में व्यस्त रखने और गतिविधियों में शामिल करने के लिए उन्हें बहुत धैर्य रखना होगा। इसलिए उन्होंने अपनी गतिविधियों और समय की योजना इस तरह से बनानी शुरू की कि बच्चे पर पर्याप्त ध्यान दिया जा सके। दूसरे बच्चों ने भी अपनी बारी का इन्तज़ार करना और अपने दोस्त का उत्साह बढ़ाना सीखा। उन्होंने ऐसा माहौल बनाया जहाँ बच्चे को लगे कि उसे स्वीकारा जा रहा है, उसका सम्मान हो रहा है, और जहाँ वह ख़ुद को महत्त्वपूर्ण महसूस करे। बच्चे को मुख्यधारा में लाने की इस प्रक्रिया में उसकी माँ का सहयोग महत्त्वपूर्ण था। वह घर पर विभिन्न सामग्रियों का इस्तेमाल करके उसे अलग-अलग गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रेरित करती हैं, और उसकी सहायता करने के लिए शिक्षण रणनीतियाँ सीखती रहती हैं।

केस स्टडी 2

आँगनवाड़ी की एक शिक्षिका को 4 साल के बच्चे को कक्षा की गतिविधियों में शामिल करना मुश्किल लगा क्योंकि वह सभी गतिविधियों में अरुचि दिखाता था। वह बेहद उदास व ऊबा हुआ-सा लगता था। सर्कल समय और समूह गतिविधियों के दौरान भी उसे विचारों को समझने में काफ़ी समय लगता था, और वह शायद ही कभी दूसरे बच्चों के साथ खेलता था। कक्षा के दौरान उस बच्चे के सीखने के पैटर्न, व्यवहार और अनुक्रियाओं को ध्यान से देखकर शिक्षिका समझ गईं कि इसपर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

शिक्षिका ने कक्षा के पूरे दिन के कार्यकलापों में बड़ी, छोटी और व्यक्तिगत निर्देशात्मक गतिविधियों में सन्तुलन बनाए रखने पर ध्यान देना शुरू किया। इससे शिक्षिका को बच्चे से अधिक बार बातचीत करने, मदद करने और मार्गदर्शन करने के अवसर मिले। छोटे समूह की गतिविधियों के दौरान उन्होंने बच्चों को एक दूसरे का सहयोग करके कार्यों को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित किया। इससे वह बच्चा ख़ुश हो गया कि उसने भी बाक़ी बच्चों के साथ मिलकर छोटी-छोटी सफलताएँ हासिल की हैं। शिक्षिका ने सर्कल समय के दौरान 'उत्तर देने से पहले एक पल रुकें' का तरीक़ा अपनाना शुरू किया। इससे बच्चे को सोचने और उत्तर देने का समय मिला। उन्होंने बच्चे की प्रगति पर नज़र रखना शुरू किया, और उन क्षेत्रों की पहचान की जिनपर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत थी। इसके साथ ही, शिक्षिका ने घर पर बच्चे की सीखने की आदतों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके माता-पिता के साथ बातचीत जारी रखी, और उसकी रुचियों के अनुसार शिक्षण रणनीतियों को समायोजित किया। शिक्षिका ने उसकी छोटी-छोटी उपलब्धियों को पहचाना और उनकी प्रशंसा की। इससे बच्चे का आत्मसम्मान बढ़ा, और उसे सीखना जारी रखने की प्रेरणा मिली। इन सभी प्रयासों से अब वह गतिविधियों में भाग लेने के लिए उत्सुक रहता है, साथियों के साथ ख़ुशी-ख़ुशी बातचीत करता है, और खेलता भी है।

ऐसे बच्चों, जिनको सीखने में कठिनाई होती है, के शुरुआती वर्षों में शिक्षा में उनकी सक्रिय भागीदारी और पालन-पोषण करने के लिए संवेदनशीलता, धैर्य और समर्पण की ज़रूरत होती है। हर बच्चे की यात्रा अलग और अनूठी होती है। चुनौतियों से उबरने और अपनी क्षमता हासिल करने के लिए उन्हें व्यक्तिगत मार्गदर्शन और प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है। यह शिक्षक के लिए एक बड़ी चुनौती है क्योंकि उन्हें भी अपनी क्षमता बढ़ाने और प्रेरित बने रहने में निरन्तर सहयोग की आवश्यकता होती है।

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

सुजाता रावी तेलंगाना के संगारेड्डी में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में ब्लॉक समन्वयक हैं। वे अन्य राज्यों में आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के क्षमता-निर्माण, बच्चों के आकलन और प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ईसीई) विस्तार के लिए पाठ्यक्रम और कोर्स बनाने वाली टीम में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : raavi.sujatha@azimpremjifoundation.org

दसन्ना मरेड्डी तेलंगाना के संगारेड्डी के पटनचेरू ब्लॉक में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के फ़ील्ड वर्क का समन्वय करते हैं। शुरुआती 2 वर्ष इंजीनियरिंग क्षेत्र में काम करने के बाद पिछले 10 सालों से शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : dasanna.mareddy@azimpremjifoundation.org

कलाओं को समावेशी बनाने में शिक्षक की भूमिका

दीपिका शर्मा

कला को रचने (या न रच पाने) से जुड़ा भय, हम जाने अनजाने ख़ुद से जुड़ने वाले बच्चों को दे देते हैं। शिक्षकों के रूप में कला के बारे में हमारा खुलापन और मान्यताएँ इस बात को तय करेंगी कि हमारी कक्षाओं में बच्चे कला रूपों के साथ किस तरह जुड़ते हैं। कला के प्रति सकारात्मक और खुला रवैया अपनाना एक ऐसे समावेशी वातावरण को बढ़ावा देता है जहाँ हर बच्चा ख़ुद को रचनात्मक रूप से तलाशने और अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित महसूस करता है।

"मैं गा नहीं सकती।"

"मैं ड्राइंग नहीं कर सकता।"

"मैं एक्टिंग में अच्छी नहीं हूँ।"

"मैं कोई कलाकार नहीं हूँ।"

हममें से कितने लोग इनमें से किसी भी कथन के साथ ख़ुद को जुड़ा पाते हैं? जब हम बच्चे थे तो हमारे गाना गाने में सुधार करके हमें ऐसी सही लय ताल में गाने के लिए कहा जाता था, जिनसे संगीत और गायन का विचार निर्मित होता था। हममें से अधिकांश लोग अन्त्याक्षरी में सबके साथ गाने से बचते थे, और ज़्यादा-से-ज़्यादा अपने बाथरूम के इंडियन आयडल होने तक सीमित रह जाते थे। गाने के लिए माइक या मंच दिए जाने पर गाना गा पाने की अपनी असमर्थता में हमारा भरोसा और सुदृढ़ हो जाता था, और हम भागीदारी करने से ही मना कर देते थे, जिससे आगे संगीत सीखने के हमारे अवसर बहुत कम हो जाते थे।

हममें से अधिकांश लोगों के लिए संगीत, नृत्य, चित्र बनाने या अभिनय जैसी गतिविधियों में ग़लतियाँ करने के भय ने हमारे इस विश्वास को आकार दिया है कि 'कलाएँ' हमारे लिए नहीं हैं। यह धारणा कला को सही या ग़लत ठहराने के पारम्परिक दृष्टिकोण से निकलती है। उदाहरण के लिए, किसी चित्र को प्राय: तभी सुन्दर माना जाता है जब वह सटीक ढंग से वास्तविकता का निरूपण करता हो। फिर भी, कुछ सबसे विख्यात अन्तर्राष्ट्रीय कलाकार, जैसे विन्सेंट वॉन गो और पाब्लो पिकासो, ठीक इसीलिए जाने जाते हैं क्योंकि उनकी रचनाएँ 'विशुद्धता' और परिपूर्णता के पारम्परिक मानकों को नहीं मानतीं। यदि हममें से कई लोगों की तरह वे भी कलाओं से डरते तो दुनिया उनकी उत्कृष्ट रचनाओं से वंचित रह जाती।

चित्र 1: कलाएँ बच्चों को खुलकर अभिव्यक्त करने के अवसर देती हैं

एनईपी 2020, जिसे अच्छी तरह संरचित एनसीएफ का आधार हासिल है, हर कक्षा में 'कला के एकीकरण' पर ज़ोर देती है। इस एकीकरण तक दो तरीक़ों से पहुँचा जा सकता है : पाठ्यचर्या के एक अंग के रूप में और शिक्षण विधि के साधन के रूप में। दोनों तरीक़े कक्षा के वातावरण को समृद्ध बनाने में अलग-अलग, लेकिन पूरक भूमिकाएँ निभाते हैं।

आइए, अब इसकी बात करते हैं कि हमें अपने शिक्षण में कलाओं को क्यों, और किस तरह शामिल करना चाहिए। मैं विभिन्न परिस्थितियों और सीखने के अलग-अलग परिवेश में बच्चों व शिक्षकों के साथ काम करने के अपने अनुभव से मिली समझ को साझा करूँगी। आशा करती हूँ कि इससे आपको अपनी अगली कक्षा के लिए कुछ उपयोगी सुझाव मिल सकेंगे।

पाठ्यचर्या के एक अंग के रूप में कला

हर एक बच्चे के लिए भागीदारी करने, अपनी रुचियों या कौशलों को साझा करने और कलात्मक परियोजनाओं में सहयोग करने की जगह बनाकर हम सही मायनों में एक समावेशी वातावरण को बढ़ावा देते हैं। यह तरीक़ा सभी आयु वर्गों के लिए काम करता है, बशर्ते हम व्यक्तिगत अभिव्यक्ति और रचनात्मक योगदानों को प्रोत्साहित करें।

सहयोग कैसे काम करता है

मेरी पसन्दीदा गतिविधियों में से एक है सामूहिक कोलाज कला। इसे आवश्यकतानुसार रूपान्तरित करके किंडरगार्टन से बारहवीं तक के बच्चों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। एक बार जब सहयोग से बनी इन कलाकृतियों को दीवार, नोटिस बोर्ड, वग़ैरह पर लगाया जाता है तो वे निरन्तर विद्यार्थियों को प्रेरित करती रहती हैं, और स्कूल के समुदाय में उनकी जगह के बारे में उन्हें भरोसा दिलाती रहती हैं।

जब हम कला-आधारित सहयोगात्मक परियोजनाओं को शिक्षण विधि में शामिल करते हैं तो सहपाठियों के बीच क्रियाशीलता नाटकीय रूप से सकारात्मक दिशा में मुड़ जाती है। किशोर उम्र के बच्चों की एक कार्यशाला में मैंने देखा था कि कुछ बच्चे दूसरे बच्चों पर प्रभुत्व स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन कला-आधारित नियमित गतिविधियों के माध्यम से ये विद्यार्थी सत्ता के संघर्ष को एक तरफ़ रखकर मिल जुल कर और सहयोगपूर्ण ढंग से काम करते हुए अपनी सामूहिक कलाकृति को बना सके, और प्रस्तुत कर सके। एक और सशक्त स्मृति जो मेरे दिमाग़ में छाई रहती है वह है, बच्चों के एक ऐसे समूह को मिल जुल कर समूह गीत गाते देखना जिसमें एक ऐसा बच्चा भी शामिल था, जिसे सीखने से जुड़ी परेशानियाँ पेश आती थीं। उनकी सामूहिक गतिविधि में एकता और साझा उद्देश्य का जो गहरा भाव था वह बहुत प्रगाढ़ था, और अधिकांश कक्षा परिवेशों में इसे हासिल करना बहुत मुश्किल होता है।

ग़ैर-निर्णायक होना क्यों बेहद ज़रूरी है

कलाएँ बच्चों को ख़ुद को खुलकर अभिव्यक्त करने की एक अनोखी, ग़ैर-निर्णायक जगह प्रदान करती हैं। यह ज़रूरी है कि शिक्षक हर एक बच्चे की रचना पर ग़ैर-निर्णायक प्रतिक्रियाएँ

चित्र 2 : बच्चों की कलाकृति को ग़ैर-निर्णायक होकर देखना ज़रूरी है

दें। ये प्रतिक्रियाएँ वर्णनात्मक और विस्तृत होनी चाहिए जैसे कि, "मुझे दिख रहा है कि तुमने इस हिस्से को बनाते समय बहुत बारीक़ियाँ शामिल की हैं"; "ऐसा लगता है कि इसे लिखते हुए तुमने अपनी ही ज़िन्दगी से प्रेरणा ली है"; आदि। ये "वाह!"; "कितनी सुन्दर है!"; आदि जैसी निजी या मनमौजी प्रतिक्रियाएँ नहीं होनी चाहिए। इस जगह में कुछ भी अच्छा या बुरा; सही या ग़लत नहीं होता।

अधिक संरचित या अकादमिक गतिविधियों के उलट, कलात्मक अभिव्यक्ति ग़लत होने के भय के बग़ैर खोजबीन करने की दावत देती है। चाहे चित्रकारी हो, संगीत, नृत्य हो या फिर कहानी सुनाना, बच्चे इनके माध्यम से अपने मनोभावों, विचारों और नज़रियों को ऐसे तरीक़ों से सम्प्रेषित कर सकते हैं जो बेहद व्यक्तिगत और उनके व्यक्तित्व का आईना होते हैं। यह खुला ढंग बच्चों को अवसर देता है कि वे ख़ुद को अपने प्रयासों के लिए मूल्यवान महसूस कर सकें। वे यह महसूस न करें कि अपनी रचना की गुणवत्ता या सटीकता के लिए उन्हें आँका जा रहा है। कला की दुनिया में हर योगदान का अपना अर्थ होता है, और यह बच्चे में आत्मविश्वास व जुड़ाव के भाव को बढ़ावा देता है। कलात्मक चश्मा हर उस बच्चे के लिए जगह बना देता है जो किसी सपाट पहाड़ या गुलाबी आसमान का चित्र बनाता है।

प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है, परिणाम नहीं

हमें इस बात को समझना होगा कि कला को रचने की प्रक्रिया, अन्त में सामने आने वाली कलाकृति की तुलना में कहीं ज़्यादा महत्त्व रखती है। कलात्मक अभिव्यक्ति का असल महत्त्व पूरी प्रक्रिया में बच्चे की भागीदारी, उसकी पेंसिल / ब्रश से निकले हर एक निशान की पीछे की कहानी, व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से किसी पटकथा के आकार लेने के तरीक़े और नृत्य की हर एक चाल की मौलिकता में बसता है।

शिक्षकों के रूप में, जब हम अपना ध्यान इस बात पर लगाते हैं कि कोई कला कैसे रची गई– यानी कलाकृति के अन्तिम रूप को आकार देने में लगा भागीदारी का स्तर, विवेचनात्मक सोच और प्रयास– तब हम वाक़ई में हर बच्चे की यात्रा को समझना शुरू करते हैं। हर एक बच्चे की परिस्थिति, क्षमताओं और विकास को देखने पर हम यह समझ पाते हैं कि किस प्रकार कला ने उन्हें आत्माभिव्यक्ति की जगह प्रदान की है।

आइए, मैं शिक्षक के रूप में अपना एक अनुभव आपके साथ साझा करती हूँ। कलाकृति के लिए दिया गया संकेत सरल-सा था : एक भू-दृश्य बनाइए। मैं जब बच्चों के आसपास से गुज़री, मैंने देखा कि अधिकांश बच्चों ने बहुत आकर्षक दृश्य बनाए थे– पहाड़ों के बीच में से बहती हुई नदी और आगे जाकर एक कुएँ के बग़ल में बनी एक छोटी-सी झोपड़ी। यह सब देखा-देखा-सा, अनुमानित था। लेकिन एक बच्ची का चित्र सबसे अलग था : आधा दिख रहा एक पेड़, ख़ाली आसमान, और दूर एक अन्य पेड़ पर बँधा एक झूला। मुझे जिज्ञासा हुई। मैं उसके पास बैठी, और उससे उसके चित्र के बारे में बताने को कहा। मुझे पता था कि वह कुछ समय पहले ही दूसरे राज्य से यहाँ रहने आई थी। उसने मुझे बताया कि यह उसके गाँव के घर से दिखने वाला दृश्य था। जब मैंने उससे पूछा कि क्या उसे उस जगह की याद आती है, उसने हामी में सिर हिलाया। उस क्षण, उसकी यह कलाकृति एक चित्र से कहीं बढ़कर कुछ हो गई थी – यह उसकी भावनाओं, स्मृतियों और कुछ खोने के एहसास की ओर खुलने वाली खिड़की थी। उसे ख़ुद को अभिव्यक्त करने की जगह देने से एक ऐसी कहानी हमारे सामने आई जिसका हमें दूर-दूर तक अन्दाज़ा भी नहीं था। इस अनुभव ने मुझे यह याद दिलाया कि किसी कला को मूर्त रूप देने, और फिर उसके बारे में सोच-विचार करने की क्रिया किस प्रकार अनकही भावनाओं की परतों को खोल सकती है, ख़ासतौर पर ऐसे बच्चों के मामलों में जो किसी बदलाव या दुःख से गुज़र रहे हों।

कला के माध्यम से किया जाने वाला उपचार किसी को भी जीवन के किसी भी चरण पर लाभ पहुँचा सकता है। फिर चाहे वह भावनात्मक कष्ट से गुज़र रहा कोई बच्चा हो, अपनी पहचान की तलाश करता कोई किशोर हो, या फिर घबराहट से जूझता कोई वयस्क। केवल प्रकट घावों या सदमे वाले लोग ही नहीं, बल्कि तनाव, अनिश्चितता, या बस रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के दबाव झेल रहा कोई भी व्यक्ति कला की रचना करने की प्रक्रिया से लाभ उठा सकता है। कला की शास्त्रीय तकनीकों में से एक, 'वेट-ऑन-वेट' पेंटिंग (wet–on–wet painting), कला की इस उपचारात्मक प्रकृति को देखने में मेरे लिए बहुत बड़ी प्रेरणा रही है।

वेट-ऑन-वेट पेंटिंग

इस पद्धति में, काग़ज़ को पानी में भिगो दिया जाता है, और जब वह गीला ही रहता है, बच्चे उसपर हलके पारभासी रंग लगाते हैं। फिर ये रंग आपस में मिलना और बहना शुरू कर देते हैं, जिससे धीमे-धीमे रूपान्तरण और सूक्ष्म प्रभाव बनना शुरू हो जाते हैं। यह तकनीक सटीकता की जगह प्रक्रिया पर ज़ोर देती है, और बच्चों को विस्तृत या निश्चित नतीजे को हासिल करने की बजाय रंगों की तरलता और उनके आपसी खेल को अनुभव करने के लिए प्रेरित किया जाता है। बहते रंग शान्ति और सुकून के एहसास को बढ़ाते हैं, और बच्चा काग़ज़ पर रंग लगाने की शान्तिपूर्ण लय में खो जाता है। इस तकनीक में किसी दोषरहित रचना की बजाय संवेदी अनुभव पर दिया जाने वाला ज़ोर भावनात्मक सन्तुलन, आत्मस्वीकृति और रचनात्मकता में सहयोग करता है।

शिक्षण विधि के रूप में कला

कला शिक्षण विधि या किसी कक्षा में किसी अवधारणा को समझाने के लिए कला-आधारित प्रक्रियाओं के इस्तेमाल की सिफ़ारिश और हिमायत लम्बे समय से की जाती रही है। लेकिन शिक्षण विधि में कलाओं के एकीकरण की चुनौती अकसर संसाधनों की कमी, कला के विशिष्ट रूपों के साथ शिक्षक की सहजता न होने, और समय पर शैक्षिक लक्ष्यों को पूरा करने के दबाव के रूप में सामने आ जाती है।

संसाधन अवरोध नहीं बनने चाहिए

संसाधनों की उपलब्धता शिक्षकों के सामने आने वाली सबसे बड़ी बाधाओं में से एक होती है। कला की रचना के लिए बहुत-सी वस्तुओं की आवश्यकता और संग्रह का विचार शिक्षकों को कोई कला-समन्वित पाठ की योजना बनाने के प्रति हतोत्साहित कर देता है। असलियत में, कला-आधारित कक्षा सत्र का सबसे ज़रूरी उपकरण होता है 'अवलोकन'। हम अपने आसपास की वस्तुओं से ढेर सारी प्रेरणा ले सकते हैं। उदाहरण के लिए, पाठ्य पुस्तक से कोई सरल-सी कविता ले लें, और पेंसिल, डस्टर, तालियों या गुनगुनाने के द्वारा लयात्मक ध्वनियाँ निकालते हुए इस कविता का एक संगीतमय संस्करण बना लें। इसके बाद, इस कविता के गायन को एक गतिविधि बना लें, ताकि बच्चों को कविता पक्की भी हो जाए और कक्षा में हर्ष का माहौल भी बन जाए। कक्षाओं में इन गतिविधियों का उपयोग संगीत के माध्यम से अवधारणात्मक समझ को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है। रंगमंच और भूमिका निर्वाह-आधारित गतिविधियों में भी संसाधनों का कम ही इस्तेमाल होता है। कठपुतलियों के खेल जैसी तकनीकों में भी बहुत कम या कोई लागत नहीं लगती।

चित्र 3 : शिक्षकों द्वारा कम संसाधनों में बनाई गई कठपुतली

यहाँ शिक्षकों के द्वारा हाथ से नियंत्रित होने वाली कठपुतली के इस्तेमाल की एक झलक दी गई है। यह कठपुतली उन्होंने एक दूसरे से संवाद करने के लिए ख़ुद ही तैयार की थी। हम रंगमंच-आधारित इन तरीक़ों का इस्तेमाल कोई कहानी सुनाने के लिए, किसी अवधारणा से बच्चों को परिचित कराने, और कक्षा में किसी चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए कर सकते हैं।

सीखने का आनन्दमय अनुभव क्यों महत्त्वपूर्ण है

एक शिक्षण विधि के रूप में कला न सिर्फ़ शैक्षिक अधिगम को बढ़ावा देती है, बल्कि बच्चों के सामाजिक-भावनात्मक विकास में भी सहयोग करती है। यह एक ऐसा वातावरण निर्मित करती है जिसमें बच्चे ख़ुद को अभिव्यक्त कर पाते हैं, अपनी भावनाओं को सँभाल पाते हैं, और सीखने की प्रक्रिया में आनन्द प्राप्त करते हैं। एक ख़ुश बच्चा अकसर ज़्यादा संलग्न, जिज्ञासु और सीखने के प्रति खुलापन लिए होता है। सकारात्मक भावनाएँ रचनात्मकता, तथ्यों को स्मृति में रखने की क्षमता और सामाजिक-भावनात्मक कौशलों को बढ़ा सकती हैं, और ये सभी सीखने के बेहतर परिणामों में योगदान देते हैं।

अपने रोज़ के कक्षा सत्रों में कला को शामिल करने के सबसे आसान तरीक़ों में से एक है, तैयारी गतिविधियाँ कराना। ये त्वरित, रचनात्मक अभ्यास आपके रोज़ाना के कार्यों में कला को निर्बाध रूप से शामिल कर सकते हैं, और एक सकारात्मक मनोदशा का संचार कर सकते हैं। किसी गतिविधि के प्रति बच्चों की प्रतिक्रियाएँ शिक्षक को यह संकेत दे सकती हैं कि बच्चे प्रेरित महसूस कर रहे हैं या नहीं। दिन की शुरुआत में पाँच मिनट की कोई कला-आधारित गतिविधि भी बच्चों को सीखने और जानकारी को स्मृति में रखने में मदद कर सकती है। इन गतिविधियों को शैक्षिक अवधारणा से जोड़कर शुरुआत से ही विद्यार्थियों की समझ को गहरा किया जा सकता है, और उनमें जिज्ञासा पैदा की जा सकती है। हाथ से चलाई जाने वाली एक कठपुतली का इस्तेमाल करते हुए किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व के बारे में 2-3 मिनट कहानी सुनाने के साथ अपने दिन की शुरुआत करने की कल्पना करके देखिए!

अँग्रेज़ी से एकलव्य, भोपाल द्वारा अनुवादित।

दीपिका शर्मा एक सलाहकार हैं जो प्रारम्भिक बाल्यावस्था विकास, मानसिक स्वास्थ्य और कला के द्वारा उपचार में विशेषज्ञता रखती हैं। वह स्वराहील्स फ़ाउण्डेशन की सह-संस्थापक निदेशक हैं और निवारक मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान केन्द्रित करते हुए बच्चों के लिए अपने-आप को खेल-आधारित व कला-आधारित पद्धतियों के माध्यम से अभिव्यक्त करने हेतु सुरक्षित स्थान निर्मित करने के प्रति समर्पित हैं।

सम्पर्क : deepika.sh86@gmail.com

प्यार और समानता से बच्चों का सीखना सुगम होता है

ममता सिंह

अगर हम सिर्फ़ अपनी जाति, धर्म, जेंडर, क्षेत्र, भाषा, रूप-रंग, क़द-काठी, इत्यादि पर गर्व कर रहे होते हैं तो यह गर्व दूसरे बहुत सारे लोगों को आहत भी करता है। असल में, यह गर्व बहुधा उन चीज़ों पर होता है जिनके होने में हमारी कोई भूमिका नहीं होती। किसी भी विद्यालय में यदि बच्चों के बीच इस तरह की भेदपरक चीज़ें हैं तब एक स्वस्थ और न्यायसंगत समाज का निर्माण थोड़ा मुश्किल है।

विद्यालय समाज की एक लघु किन्तु बहुत महत्त्वपूर्ण इकाई है। यानी, हमारा समाज कैसा है, उसके रहवासियों की सोच, उनके जीवन मूल्य, आदर्श कैसे हैं, यह जानना हो तो विद्यालय के आन्तरिक वातावरण का अध्ययन आवश्यक होता है क्योंकि विद्यालय और समाज को जोड़ने वाली कड़ी बच्चे हैं। बच्चे समाज से, परिवार से जो सीखकर, देखकर आते हैं उसका प्रभाव विद्यालय पर पड़ता है, और वह जो कुछ विद्यालय से सीखकर जाते हैं उसका प्रभाव परिवार, समाज पर पड़ता है।

मैं उत्तर प्रदेश के जिस गाँव में रहती हूँ, जहाँ मेरी नौकरी है, वह ठेठ हिन्दी भाषी, सामन्तवादी सोच वाला क्षेत्र है। आमतौर पर, जाति, धर्म, जेंडर, क्षेत्र आदि पर यहाँ के रहवासी गर्व करते हैं। अतः ऐसे समाज से आए हुए शिक्षक और विद्यार्थी भी इसी मानसिकता के साथ विद्यालय आते हैं। एक स्थानीय सवर्ण शिक्षक होने के नाते मैं इस बात को बहुत स्पष्टतौर पर देख सकती हूँ, महसूस कर सकती हूँ, और कह भी सकती हूँ, नहीं तो कई बार लोग इसे इतनी सामान्य बात मानते हैं कि इसपर ध्यान देना भी उचित नहीं समझते।

चित्र 1: कम्प्यूटर स्क्रीन पर जिज्ञासा भरी आँखें

अब बात आती है जाति व्यवस्था की। यहाँ यह स्पष्ट किया जाना ज़रूरी है कि आमतौर पर उत्तर प्रदेश के बेसिक शिक्षा विभाग के विद्यालयों में जाति से ज़्यादा वर्ग प्रभावी है। अर्थात, यहाँ ये तो हो सकता है कि उच्च जाति का बच्चा दाख़िला ले ले, लेकिन उच्च आय वर्ग का बच्चा इन विद्यालयों में पढ़ने नहीं आएगा भले वह निचली (समाज द्वारा निचली समझी जाने वाली) जाति का हो।

ऐसे माहौल में, जब बच्चा किसी दूसरे स्कूल से पाँचवीं तक पढ़कर हमारे यहाँ आता है तो उसे कई दिन नहीं बल्कि कई महीने लग जाते हैं, यह स्वीकार करने में कि उसी गाँव में एक ऐसा भी स्कूल है जहाँ जाति, धर्म, जेंडर का कोई महत्त्व ही नहीं है। एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगी। हमारे गाँव में मुसहर (वनवासी, वनमानुष) अनुसूचित जाति का एक परिवार गाँव से बाहर भीटे (टीला) पर रहता है। उनके परिवार की एक बच्ची ने हमारे स्कूल में दाख़िला लिया। वह उस परिवार की पहली लड़की थी जो पाँचवीं के बाद आगे पढ़ने को राज़ी हुई, नहीं तो कितनी भी कोशिश की जाए उनके परिवार के लड़के-लड़कियाँ आगे पढ़ने नहीं जाते। हमारी कोशिशों से बच्ची ने अप्रैल में दाख़िला ले तो लिया, पर वह सबके साथ एडजस्ट नहीं हो पा रही थी। सबसे पहले तो वह मध्याह्न भोजन के लिए घर से थाली ले आई, क्योंकि इसके पहले के स्कूल में बच्चे स्कूल के बर्तन में खाना नहीं खाते थे। इसके पीछे वजह यह थी कि स्कूल के बर्तन को हर जाति वाले बच्चे इस्तेमाल करते थे, इसलिए हर बच्चा अपना बर्तन ख़ुद लाता था।

हमारा स्कूल कभी बन्द नहीं होता

हमारे स्कूल में ज़्यादातर बच्चे अन्य पिछड़ा वर्ग और अनुसूचित जाति के हैं। उनके लिए जनजाति की बच्ची का स्कूल में होना अलग बात तो थी ही। सबसे बड़ी समस्या थी उस बच्ची को यह भरोसा दिलाना कि इस स्कूल में बच्चे ही नहीं, शिक्षकों

चित्र 2 : सीने पिरोने के काम का आनन्द लेते बच्चे

के भी बर्तन अलग नहीं हैं, और वह बच्ची इस विद्यालय या शिक्षकों से किसी भी तरह कमतर या अलग नहीं है। हम अच्छी बातें आसानी से कह तो लेते हैं, पर उन्हें अमल में लाना बहुत मुश्किल होता है।

कुसुम को हफ़्तों लग गए, नए स्कूल के बदले परिवेश पर यक़ीन करने में। वह थोड़ी ग़ुस्सैल और अड़ियल बच्ची थी। वह छठवीं कक्षा में आ तो गई थी, लेकिन उसे वर्णमाला तक का ज्ञान नहीं था। वह कभी मुस्कुराती नहीं थी। कक्षा में सीट हो या मध्याह्न भोजन की पंक्ति, वह अकेले बैठना पसन्द करती थी, या यथासम्भव किसी लड़की के ही बग़ल में बैठती थी। एक अच्छी बात यह रही कि नया स्कूल उसे कुछ तो अच्छा लगा क्योंकि वो एक दिन भी स्कूल से अनुपस्थित नहीं रही, जबकि पहले उसका स्कूल जाना काफ़ी अनियमित रहता था। ख़ैर, अप्रैल बीता और मई में स्कूल की छुट्टियाँ शुरू हो गईं। यहाँ मैं यह बता दूँ कि चाहे सर्दी की छुट्टियाँ हों या गर्मियों की, मेरा स्कूल कभी बन्द नहीं होता। इसके पीछे दो कारण हैं। पहला कारण है शिक्षकों की कमी। तीन कक्षाओं और दस विषयों के लिए मैं अकेली शिक्षक थी। दूसरी वजह, स्कूल में छुट्टी हो जाने पर बच्चे पढ़ाई से दूर होकर जब घर, रिश्तेदारी, खेत-खलिहान में व्यस्त हो जाते हैं, उन्हें दोबारा स्कूल आने और यहाँ एडजस्ट होने में परेशानी होती है। इसलिए हमारा स्कूल लगातार खुलता है। हाँ, यह ज़रूर है कि स्कूल आना सभी बच्चों के लिए अनिवार्य नहीं है। यह उनकी मर्ज़ी है कि वह छुट्टियों में स्कूल आएँ या न आएँ। ख़ुशी की बात है कि बच्चों को स्कूल आना इतना अच्छा लगता है कि क़रीब अस्सी फ़ीसदी बच्चे छुट्टियों में भी स्कूल आते हैं। हमें उम्मीद नहीं थी कि कुसुम भी छुट्टियों में स्कूल आएगी, पर वह आई।

चूँकि छुट्टियों में मध्याह्न भोजन नहीं बनता तो बच्चे अपने घर से खाना लाते हैं। और फिर एक-एक कौर अपने शिक्षक को खिलाए बिना वह खाते नहीं। इस व्यवस्था से यह भी पता चलता है कि बच्चे घर पर क्या और कैसे खाते हैं। हालाँकि इसमें शिक्षक के लिए थोड़ी परेशानी भी हो जाती है कि पराठा-अचार का एक कौर मुँह में भरा ही होता है कि दूसरा चीनी-रोटी का आ जाता है, बहुत सम्भव है कि तीसरा कौर चावल का हो और चौथा बिस्किट का। सब बच्चे पहले खिलाने के लिए शोर मचाते हैं। लेकिन मैंने देखा, कुसुम चुपचाप अपना खाना लेकर किनारे बैठी है, न उसने किसी को खिलाया न किसी ने उसे। मैं उठकर उसके पास गई और कहा, "कुसुम तुम अकेले खा लोगी। मुझे नहीं खिलाओगी क्या!" उसने अविश्वास से आँखें उठाईं और अवधी में बोली, "तू हमार खाना खाबू?" (तुम मेरा खाना खाओगी?) मैंने कहा, "और क्या भाई! मुझे भूख लगी है खिलाओ ना!" उसने दुबारा आँखें उठाईं और बोली, "मैं रात की रोटी-अचार लाई हूँ।" मैंने कहा, "तो क्या हुआ! बहाने न बनाओ, खिलाओ।"

कुसुम के पास शायद टिफ़िन बॉक्स नहीं था। इसीलिए वह काली पॉलिथीन में ही रोटी-अचार लाई थी, और सम्भवत: इसी कारण किसी को खिलाने में हिचक रही थी। मेरे ज़िद करने पर जब उसने पहला कौर मुझे खिलाया तो उसी समय बच्चों के बीच की एक बहुत बड़ी बाधा टूट गई, और वह थी जाति की बाधा। हर नए बच्चे ने इस बात को समझ लिया कि जाति जैसी कोई चीज़ इस स्कूल में नहीं है। अब उस परिवार के चार बच्चे हमारे स्कूल में पढ़ रहे हैं, यह मेरे लिए बहुत ख़ुशी और सुक़ून की बात है। कुसुम अब सातवीं कक्षा में पहुँच गई है। उसने हिन्दी लिखना-पढ़ना सीख लिया है। एक बार उसने मुझे एक चिट्ठी भी लिखी थी। वह आगे चलकर डॉक्टर बनना चाहती है, और हम सबको यक़ीन है कि ऐसा ज़रूर होगा।

प्यार और समानता : दो जादुई चीज़ें

अपने बाईस वर्षों के अध्यापकीय जीवन के अनुभवों के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि प्यार और समानता दो ऐसी जादुई चीज़ें हैं, जो बच्चों को बिना कुछ कहे ही बहुत कुछ सिखा देती

हैं। लेकिन दु:ख की बात है कि ज़्यादातर स्कूलों में होता इसका उलटा है। जो बच्चा पढ़ने में, बोलने में, देखने में अच्छा है उसे ही हर जगह तवज्जो मिलती है, वहीं जो बच्चे ऐसे नहीं होते वह गुमनामी में स्कूल आते हैं और वैसे ही चले जाते हैं। मेरी कोशिश रहती है कि बच्चों के नम्बर, उनकी व्यवहार कुशलता, उनकी पारिवारिक-सामाजिक पृष्ठभूमि मात्र ही उनकी लोकप्रियता, सम्मान, इनाम का मानक न बनें। इसके बजाय, उनकी पढ़ने की यात्रा कहाँ से शुरू हुई और वह इस यात्रा में कैसे यात्री रहे, इसका भी ध्यान रखा जाना चाहिए। कुछ बच्चे पाँचवीं कक्षा तक पाँच वर्षों में कुल सौ दिन भी स्कूल नहीं गए, लेकिन जब से इन्होंने हमारे विद्यालय में दाख़िला लिया है एक दिन भी ग़ैर-हाज़िर नहीं हुए, चाहे उन्होंने 'ककहरा' भी छठवीं कक्षा में आकर ही सीखा। भले ही अभी उनकी यात्रा नम्बरों के मामले में अच्छी न कही जा सके, लेकिन उनकी सीखने की ललक, स्कूल में ठहराव, और सभी बच्चों का साथ मिलकर सीखना ही हमारे लिए सन्तुष्टि का सबब है।

> **"मेरी कोशिश रहती है कि बच्चों के नम्बर, उनकी व्यवहार कुशलता, उनकी पारिवारिक-सामाजिक पृष्ठभूमि मात्र ही उनकी लोकप्रियता, सम्मान, इनाम का मानक न बनें।"**

इसी के मद्देनज़र, विद्यालय के वार्षिकोत्सव में हमने उन बच्चों को खण्ड शिक्षा अधिकारी द्वारा पुरस्कृत करवाया जो सामान्यतौर पर नज़रन्दाज़ कर दिए जाते हैं। हमने पुरस्कार के लिए अलग-अलग कैटेगरी बनाईं। जैसे– स्कूल में सबसे ज़्यादा ख़ुश रहने वाला बच्चा, सबसे अच्छी मुस्कुराहट वाला बच्चा, सबकी मदद करने वाला बच्चा, छठवीं कक्षा में वर्णमाला सीखने के बावजूद ऐच्छिक टेस्ट में भाग लेने वाला बच्चा, पुस्तकालय से सबसे ज़्यादा किताबें लेकर पढ़ने वाला बच्चा, सबसे ज़्यादा भाग-दौड़ करने वाला बच्चा, आदि। इससे हुआ यह कि जो बच्चे टॉपर या नृत्य, गायन, भाषण, आदि में प्रवीण नहीं थे, उन्हें भी पुरस्कार मिला। प्यार, प्रोत्साहन और समानता के व्यवहार से उनके हौसले काफ़ी बुलन्द हो गए थे। परिणाम यह हुआ कि उन बच्चों में से एक बच्ची ने कक्षा 9 की सैनिक स्कूल प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण की, और वह राष्ट्रीय मीन्स-कम-मेरिट छात्रवृत्ति परीक्षा (एनएमएमएस) व श्रेष्ठ परीक्षा उत्तीर्ण करके आवासीय विद्यालय में पढ़ाई कर रही है।

हमारे समाज में एक और बड़ी समस्या शारीरिक बनावट, क़द-काठी, वज़न, आदि को लेकर कुण्ठाग्रस्त मानसिकता की है। इसका शिकार भी बच्चियाँ ही अधिक बनती हैं। जिस बच्ची की लम्बाई, वज़न अपनी उम्र की दूसरी बच्चियों से अधिक हो, उसका जीना दूभर कर दिया जाता है। पाँचवीं कक्षा के बाद ही ऐसी बच्चियों को 'सयानी हो गई' कहकर उनके खेलने-कूदने, बाहर निकलने पर रोक लगा दी जाती है। इसमें सबसे बुरी बात यह है कि इसकी शुरुआत घर-परिवार से होते हुए स्कूल तक पहुँच जाती है।

मेरे विद्यालय में ऐसी ही दो बच्चियाँ आईं। इनकी लम्बाई, वज़न अपनी कक्षा के दूसरे लड़के-लड़कियों से अधिक था। इस कारण वे दोनों छठवीं कक्षा में ही वयस्कों की तरह चुप, दबी-सहमी बैठी रहतीं। दोपहर के भोजन के बाद जब सब बच्चे दौड़ते-खेलते तब भी वे दोनों बैठी रहतीं। कक्षा में न तो कोई सवाल करतीं, न जवाब देतीं। बस चुपचाप स्कूल आना और जाना ही उनका काम था। नाम पूछने पर उनका गला सूख जाता, कुछ और पूछने पर उनकी आँखें भर आती थीं। धीरे-धीरे लंच ब्रेक में मेरी टीम ने, जिसमें गाँव के कुछ युवा शामिल हैं, उन दोनों बच्चियों को इंडोर गेम खेलने को दिए, लेकिन वह बैठे-बैठे कैरम, शतरंज की तरफ़ आँख उठाकर तक नहीं देखती थीं, दौड़ने-भागने वाले खेलों की तो बात ही क्या! उन्हें स्कूल आए दो-तीन महीने हो चुके थे, लेकिन हम उन्हें समावेशित करने में अभी भी नाकाम थे।

एक दिन एक अजीब घटना घटी। आमतौर पर, बच्चों के खेलने के दौरान मैं कोई किताब लेकर पढ़ने लगती थी, ताकि बच्चों पर नज़र भी रख सकूँ कि कहीं वह खेलने के दौरान झगड़ा न कर लें, उन्हें चोट न लग जाए, या वह कहीं से न गिर जाएँ। उसी दौरान, ये दोनों बच्चियाँ मेरे पास आईं और मुझसे पूछा, "आप क्या पढ़ रही हैं?" मुझे ख़ुशी और हैरानी, दोनों हुई उनके बोलने पर। मैंने उन्हें बताया, "यह ग़ज़ल संग्रह है।" उन्होंने मुझसे कोई ग़ज़ल पढ़कर सुनाने का आग्रह किया। मैंने उन्हें पास बिठाकर फ़टाफ़ट दो-तीन ग़ज़लें पढ़कर सुना दीं। अब यह एक रुटीन बन गया। लंच ब्रेक में वे दोनों मेरे पास आ जातीं और मुझसे कविता, ग़ज़ल या जो भी किताब मेरे हाथ में हो उसे पढ़ने का आग्रह करतीं। एक दिन मैंने उनसे कहा, "आज तुम लोग मुझे पढ़कर सुनाओ।" दोनों ने अपना सिर झुकाकर फिर से चुप्पी साध ली। कई दिनों के साहचर्य के दौरान मुझे पता चल गया था कि उनकी रुचि कविताओं में है, बस गहरे हीनता बोध और संकोच के चलते वे बोलती नहीं हैं। ख़ैर, उस दिन तो नहीं, लेकिन अगले दिन से, पहले एक कविता, फिर दो-तीन कविताएँ सुनाने का जो सफ़र शुरू हुआ वह आज इस मुक़ाम पर है कि उन दोनों से अच्छा कविता वाचन कोई और नहीं कर पाता। कक्षा में केवल पढ़ने, लिखने, बोलने में तेज़तर्रार बच्चों की तरफ़ ही ध्यान दिया जाता है, लेकिन अगर औसत या इससे भी कम पढ़ने, लिखने, बोलने वाले बच्चों पर अलग से ध्यान दिया जाए तो आश्चर्यजनक परिणाम मिलते हैं। अब अपनी कक्षा में बच्चों को पढ़ते-लिखते देखना बहुत सुखद है।

ममता सिंह उत्तर प्रदेश के अमेठी ज़िले के एक पिछड़े गाँव अग्रेसर में बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित जूनियर हाई स्कूल में कार्यरत हैं। स्कूल में नए प्रयोगों को करने के लिए व सावित्री बाई फुले पुस्तकालय बनाने के चलते उनकी पहचान देशभर में बन रही है।

सम्पर्क : mamtathinks@gmail.com

लड़कियों में माहवारी और उसका सीखने से सम्बन्ध

रुबीना ख़ान

सीखने और न सीख पाने के बीच एक बारीक़-सी रेखा होती है। अकसर समझ नहीं आता कि सारे उपाय करने के बाद भी बच्चे सीख क्यों नहीं पा रहे हैं। लेकिन जब न सीख पाने की परतों को एक-एक कर खोलना शुरू करते हैं तो कई कारण सामने आते हैं। कक्षा में ध्यान नहीं लगा पाने और न सीख पाने का एक बड़ा कारण है बच्चियों की माहवारी। इस लेख में इस सामान्य शारीरिक परिवर्तन और सीखने के सम्बन्ध पर दर्ज कुछ अनुभव प्रस्तुत हैं।

स्कूल की प्रक्रियाओं में माहवारी जैसी सामान्य (इसलिए क्योंकि यह एक सामान्य शारीरिक परिवर्तन है) लेकिन एक विशेष परिस्थिति (क्योंकि इसपर बात करना मुनासिब नहीं समझा जाता) के लिए किस तरह का समावेशन है, यह समझना ज़रूरी है। इसके चलते बच्चियों का नियमित रूप से स्कूल आना, सीखना सब बाधित होता है। जब समझा, महसूस किया तब कुछ राहें तलाशीं कि कैसे इन दिनों का समावेशन हो, और बच्चियों के स्कूल आने के साथ ही उनका सीखना भी सुनिश्चित हो।

इस लेख के माध्यम से, मैं माहवारी और बच्चियों के सीखने से जुड़े अपने व्यक्तिगत अनुभवों को साझा कर रही हूँ। मेरा कार्य भोपाल के बैरसिया ब्लॉक के अन्तर्गत है। मेरे कार्य का मुख्य हिस्सा शासकीय स्कूलों के शिक्षकों के साथ उनकी शिक्षण प्रक्रिया को बेहतर करने में सहयोग देना है। हम अकसर देखते आए हैं कि कक्षा में बच्चों के न सीखने का कारण ऐसी शिक्षण प्रक्रियाएँ हैं जो बाधा के रूप में काम करती हैं, और वे बच्चे की ज़रूरत से परे होती हैं। पर इनके साथ-साथ व्यवहारिक व शारीरिक रूप से जुड़ी कुछ ऐसी मुश्किलें भी हैं जो पढ़ाई के दौरान अड़चन का काम करती हैं, और ये सब वह मुश्किलें हैं जिन्हें सीखने से अलग देखा जाता है।

माहवारी के चलते यूनिफ़ॉर्म बदलने की बात

इस विषय को समझने के उद्देश्य से मेरी कार्ययोजना इसके इर्दगिर्द बनी। इसके लिए मैंने छह माह के दौरान बैरसिया ब्लॉक के 3 कन्या स्कूल व 2 कन्या छात्रावासों में जाना तय किया। यह भी तय किया कि इन स्कूलों में माध्यमिक स्तर की छात्राओं के साथ प्रजनन स्वास्थ्य से जुड़े मसले पर सिलसिलेवार ढंग से बात करनी चाहिए। हमारे पहले सत्र में ही माहवारी पर बात करने के दौरान तमाम क़िस्म के सवाल व मुश्किलें छात्राओं के बीच से आईं। इनमें से ही कुछ समस्याएँ इस तरह की भी रहीं जहाँ माहवारी के दिनों के चलते उनकी शिक्षा प्रभावित होती है। कुछ छात्राओं ने बताया कि वे इन दिनों स्कूल नहीं जातीं क्योंकि

चित्र 1: माहवारी के कारण सीखने में आने वाली मुश्किलों पर चर्चा

उन्हें यूनिफ़ॉर्म में दाग़ लगने की चिन्ता होती है जो सफ़ेद रंग की सलवार, दुपट्टा और हल्के आसमानी रंग का कुर्ता है। वे आगे बताती हैं कि अगर यूनिफ़ॉर्म के बदले दूसरे किन्हीं कपड़ों में हम स्कूल आते हैं तब फ़ाइन भरना पड़ता है। इसलिए न चाहते हुए भी हर माह 3-5 दिन हमारी पढ़ाई छूट जाती है, और होमवर्क बढ़ जाता है। ये सभी मुश्किलें इन छात्राओं के लिए फ़िक्र का विषय थीं।

कक्षा 8वीं की एक छात्रा माहवारी से सम्बन्धित अपना अनुभव बताते हुए भावुक हो गई। उसका अनुभव कुछ इस तरह का था, "मैं एक बार माहवारी के समय घर के कपड़ों में ही कुछ दिन स्कूल आई थी। क्लास का एक लड़का मुझे रोज़ाना इन कपड़ों में देखकर कमेंट करने लगा। वह अपने एक दोस्त से बोला कि तू अलग रंग की पैंट पहनकर आया है। क्या तेरी भी पैंट में दाग़ लग गया? मुझे शर्म आ रही थी जब वह यह सब बोल रहा था।" इस तरह हर माह की मुश्किल से बचने के लिए छात्राओं का कहना था कि हमारे स्कूल की यूनिफ़ॉर्म का रंग गहरा होना चाहिए ताकि दाग़ दिखने जैसी झंझट ही नहीं रहे। हमारे लिए बनी यूनिफ़ॉर्म में हमारी राय, सहूलियत, आदि पर ध्यान नहीं दिया गया। अपनी इस समस्या को कुछ छात्राओं ने शिक्षिका के समक्ष रखा तो उन्हें यह बात गम्भीर लगी।

उन्होंने इस समस्या को वरिष्ठ शिक्षकों के समक्ष रखा, पर वहाँ यह सिर्फ़ बहस का मुद्दा बनकर रह गई। कुछ शिक्षिकाओं का कहना था कि छात्राएँ पैड की जगह कपड़ा इस्तेमाल करती होंगी या फिर समय पर पैड नहीं बदलती होंगी इसलिए यह समस्या आ रही होगी। माहवारी में आधी छुट्टी लेकर घर जाने के सवाल पर शिक्षिकाओं का जवाब था कि ऐसे समय में किसी भी तरह का दर्द होना आम बात है, और हमें तो ऐसा हुआ भी नहीं। आजकल के बच्चे कुछ ज़्यादा ही बढ़ाकर बोलते हैं। इस मुद्दे पर संवेदनशीलता जताने वाली शिक्षिका का अन्त में यही कहना रहा कि उनकी तरफ़ से जो भी सहयोग बन पाएगा वह करेंगी, लेकिन यूनिफ़ॉर्म का रंग बदलना बड़े स्तर की बात है।

मुश्किलें और भी थीं

एक और अनुभव भी इस तरह से रहा, जब मैंने प्राचार्य मैडम से कहा, "मैं पहले उन बच्चियों के साथ माहवारी पर सत्र लेना चाहूँगी जिनकी माहवारी अभी शुरू नहीं हुई है।" इनमें अधिकांश छात्राएँ 5वीं और 6वीं कक्षा की थीं। मैडम ने कहा, "उन्हें अभी से बताकर क्यों भ्रमित करना? हमें भी कब, किसने बताया था, पर हमने भी तो मैनेज कर लिया था।" हालाँकि इस बात के कुछ दिनों बाद ही इत्तेफ़ाक़ से 6वीं कक्षा की एक छात्रा को पहली बार ही माहवारी आने से ख़ासी मशक़्क़त का सामना करना पड़ा। उसे इसके बारे में पहले से जानकारी नहीं थी। कपड़े ख़राब हो जाने से वह घबराकर रोने लगी। जैसे-तैसे शिक्षिका ने उसे उसके घर पहुँचाया। इस मामले के बाद प्राचार्य मैडम ने मुझे इन छात्राओं के साथ सत्र लेने की अनुमति दी। इस तरह की कुछ और दिक़्क़तें भी दूसरे सत्रों के दौरान मेरे सामने आईं, जिनमें मुख्यतः स्कूल में सेनेटरी पैड की व्यवस्था न होना, शौचालय का साफ़ न होना, पानी न होना, डस्टबिन की कमी, स्कूल में रेस्टरूम न होना, आदि शामिल हैं। जैसा कि ऊपर ज़िक्र किया गया है, इस समय व्यवहार में होने वाले बदलाव, माहवारी आने के कारणों, देखभाल, आदि के सन्दर्भ में इन स्कूलों में इस विषय पर किसी तरह का कोई विचार विमर्श व चर्चा नहीं की गई थी। तक़लीफ़देह बात यह है कि इस समस्या को पढ़ाई की दिक़्क़तों से अलग देखा जाता है, जबकि यह कहीं-न-कहीं छात्राओं की पढ़ाई को प्रभावित करती आई है। जिस तरह से ये छात्राएँ स्कूल से जुड़ी हैं और यह परेशानी उनसे, ऐसे में इस समस्या का पढ़ाई पर नकारात्मक असर होना

चित्र 2 : बात करने से रास्ते निकल आते हैं

वाजिब बात है। दर्द होने की स्थिति में कई बार उनका पूरे समय कक्षा में बैठना भी दूभर हो जाता है। इसी प्रकार, व्यवहार में अकेलापन, चिड़चिड़ाहट भी दिखने लगती है जिसपर बात करने और समझने के लिए स्कूल में कभी कभार ही उन्हें कोई शिक्षक मिल पाते हैं।

> **छात्राओं का कहना था, "... पहले हम केवल पढ़ाई के बारे में टीचर से बात करते थे, पर अब माहवारी जैसे विषय पर भी बात हो पाती है।"**

स्कूल के इतर कन्या छात्रावास में भी इन सत्रों के संचालन के लिए मेरा जाना होता रहा है। ये बच्चियाँ घर-परिवार से दूर रहकर यहाँ इन्हीं सब मुश्किलों का सामना कर रही थीं। लम्बे प्रयास के बाद इन छात्राओं और शिक्षिका, जो उनकी वार्डन भी हैं, के साथ इस मुश्किल पर साझा संवाद आयोजित किया गया। छात्राओं के निरन्तर प्रयास से प्रत्येक माह के अन्तिम दिन प्रजनन स्वास्थ्य, माहवारी जैसे विषयों से जुड़ी चर्चाएँ छात्रावास में नियमित शुरू हो पाईं। सेनेटरी पैड की ठीक व्यवस्था भी यहाँ देखने को मिली। छात्राओं का कहना था, "हमें ठीक लग रहा है। पहले हम केवल पढ़ाई पर टीचर से बात करते थे, पर अब इस तरह के विषय पर भी बात हो पाती है।" छात्रावास में इस तरह के विषय को ज़रूरी मानते हुए उसपर हुए एक स्तर के काम से इन छात्राओं में सजगता आने के साथ ही खुलकर समूह में बात करने, और एक दूसरे के सवालों को एक मंच तक लाने के प्रयास नज़र आ रहे हैं। ध्यान देने पर समझ आता है कि एक बच्चे को और उसकी शिक्षा को प्रभावित करने वाले कई कारक ऐसे भी होते हैं, जो ज़ाहिर तो नहीं होते पर जिनपर समावेशी रूप से विचार करने की आवश्यकता होती है।

लम्बे वक़्त से चली आ रही इस मुश्किल पर *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023* के अन्तर्गत समावेशी शिक्षा प्रणाली के निर्माण को प्राथमिकता दिए जाने की सम्भावना है जो हाशियाकृत समुदायों के विद्यार्थियों सहित दूसरे विद्यार्थियों की तमाम ज़रूरतों को पूरा करने की बात करती है। असल में, देखा जाए तो कक्षा इस तरह की होनी चाहिए जो समावेशी, सक्षम, सीखने का माहौल, और हर बच्चे को स्वतंत्रता, खुलापन, स्वीकृति, सार्थकता व अपनापन प्रदान करे।

रुबीना ख़ान ने मुस्कान संस्था में एक दशक से ज़्यादा समय काम किया है। इस दौरान आप संस्था द्वारा संचालित स्कूल में बतौर शिक्षिका कार्यरत रहीं। इसके अलावा, आप यूनिसेफ़ व मुस्कान के सहयोग से बाल संरक्षण के मुद्दों पर समुदाय और विभाग स्तर पर पैरवी के काम से जुड़ी रहीं। वर्तमान में, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में सन्दर्भ व्यक्ति के रूप में भोपाल के बैरसिया ब्लॉक में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : rubina.khan@azimpremjifoundation.org

एक विशेष विद्यालय का समावेशी विद्यालय बनना

आर लालमाछुआनी

किसी भी बच्चे को धीमी गति से सीखने वाला या ज़िद्दी कहना उचित नहीं है। साथ ही, शिक्षक द्वारा ऐसी शिक्षण प्रक्रियाओं का उपयोग करना अर्थपूर्ण रहता है जिनमें लचीलापन हो, ताकि पढ़ाने के सिर्फ़ एक ही तरीक़े पर निर्भर न रहना पड़े। यह मुश्किल लग सकता है, लेकिन थोड़े से अधिक प्रयास और धैर्य के साथ काम करने से यह आसान होने लगता है और हम बच्चे के उस आत्मविश्वास को सहेज पाते हैं जिसकी सीखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

भारत में केरल के बाद मिज़ोरम राज्य की साक्षरता दर दूसरे स्थान पर है। मिज़ो समाज 'त्लावमंगइह्ना' नामक आचार संहिता पर आधारित है, जहाँ हर किसी से मेहमाननवाज़ी, दयालुता, निःस्वार्थता और दूसरों की मदद करने की उम्मीद की जाती है।

मैंने 2018 में सुनने की अक्षमता वाले बच्चों के लिए एक विशेष विद्यालय की शुरुआत की। पहले बैच में 2.5 से 6 वर्ष की आयु के सिर्फ़ 10 विद्यार्थी थे और ये बच्चे शाला पूर्व या प्री-स्कूल वाले थे। ऐसे स्कूल की आवश्यकता उन श्रवण बाधित बच्चों के अभिभावकों द्वारा महसूस की गई, जिन्हें मैं स्पीच थेरेपी दे रही थी। ये बच्चे शैक्षिक और भावनात्मक कठिनाइयों के कारण उन स्कूलों को छोड़ रहे थे जहाँ विशेष ज़रूरत के बच्चे अन्य बच्चों के साथ पढ़ते थे। 5 वर्षीय सोमा एक ऐसा ही बच्चा था।

सोमा को बहुत कम सुनाई देता है और उसे सीखने में भी कठिनाई होती है। वह 2.5 साल से हियरिंग एड (सुनने की मशीन) पहन रहा है और नियमित रूप से स्पीच थेरेपी भी ले रहा है, जिससे उसके भाषा कौशल में सुधार हुआ है। सोमा के माता-पिता ने उससे बड़ी उम्मीदें लगा रखी थीं और जब वह 4 साल का हुआ तो उसे पुन: उसी स्कूल में दाख़िला दिला दिया। सोमा वहाँ जाने के लिए बहुत उत्साहित और ख़ुश था। लेकिन उसे अपने गृहकार्य और मौखिक रूप से अपनी बात कहने में सहायता की आवश्यकता पड़ती थी, जो उसके शिक्षक नहीं दे पाते थे। इससे सोमा की प्रगति में बाधा आई। उसके शिक्षक ने स्कूल के बाद उपचारात्मक कक्षाओं का सुझाव दिया, लेकिन

चित्र 1: अपनी-अपनी पसन्द की बड़े चित्रों वाली किताबों को पलटते बच्चे

उसके माता-पिता को लगा कि वह मुख्यधारा के स्कूल में ठीक से फ़िट नहीं हो पा रहा है और तब उन्होंने उसे हमारे विशेष स्कूल में दाख़िला दिलाने का फ़ैसला किया। लगातार स्पीच थेरेपी और सहायता के मिलने से सोमा ने अपना खोया हुआ आत्मविश्वास वापस पा लिया।

प्री-स्कूल के 10 विद्यार्थियों के पहले बैच ने उल्लेखनीय प्रगति की, उन सभी ने हियरिंग एड पहने और उन्हें रोज़ स्पीच थेरेपी दी जाती थी। साथ ही, एक स्कूल के रूप में हमारी 'समावेशन' सम्बन्धी समझ भी बढ़ती जा रही थी। 'समावेशन' शब्द नियमित शिक्षकों और विशेष शिक्षकों दोनों को सतर्क कर देता है, क्योंकि इसे लागू करना असम्भव लगता है। हमें भी इस बात पर आश्चर्य होता था कि उन स्कूलों में समावेशन का प्रभावी ढंग से पालन कैसे किया जाता है जो समावेशी होने का दावा करते हैं। प्रारम्भ में हमने समावेशन को मुख्य रूप से विकलांग बच्चों के समावेशन से जोड़ा था, लेकिन फिर हमने जाना कि समावेशन यानी सभी बच्चों को शामिल करना, फिर चाहे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शारीरिक या बौद्धिक क्षमताएँ, भावनात्मक स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति आदि कुछ भी क्यों न हो। हमने महसूस किया कि कई शिक्षक पहले से ही अनजाने में समावेशन का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा में प्रकाश को इस तरह से समायोजित करना कि बच्चे ब्लैकबोर्ड को स्पष्ट रूप से देख सकें। शिक्षक द्वारा ऐसा करना समावेशन का कार्य ही तो है।

इस बढ़ती समझ के साथ हमने अप्रैल 2024 में अपने स्कूल के दरवाज़े सभी बच्चों के लिए खोल दिए। तेरह विद्यार्थियों को प्री-स्कूल में नामांकित किया गया, जिनमें एक श्रवण दोष वाला, एक ध्वनि, वाणी दोष वाला (Cleft lip and cleft palate), एक गुदा एट्रेसिया वाला में जन्म से मौजूद रुकावट या ग़ायबी की स्थिति (Anal atresia) है। तीन कम सामाजिक बुद्धिमत्ता वाले और सात विद्यार्थी सामान्य थे। समाज में विकलांगता से जुड़ी भावनात्मक बाधाओं और कलंक के कारण समावेशी प्री-स्कूल खोलना एक महत्त्वपूर्ण और चुनौतीभरा प्रयास था।

हमारे प्री-स्कूल को और अधिक समावेशी बनाने में तीन 'उपकरण' विशेष रूप से सहायक रहे हैं।

1. **सीखने के लिए सार्वभौमिक डिज़ाइन (यूडीएल)**[1] : यूडीएल सीखने के माहौल की डिज़ाइन का मार्गदर्शन करने के लिए एक रूपरेखा है जो हर शिक्षार्थी के लिए सुलभ, समावेशी, न्यायसंगत और चुनौतीपूर्ण है। यूडीएल का आधार यह है कि शिक्षार्थी की कथित कमी को समस्या के रूप में देखने की बजाय वातावरण की डिज़ाइन को बदलना चाहिए। आइए, इसे 6 वर्षीय टिमोथी के उदाहरण से बेहतर तरीक़े से समझते हैं। टिमोथी को उन कार्यों को पूरा करने में एक घण्टे का समय लगता था जिन्हें उसके सहपाठी 15 मिनट में पूरा कर लेते थे। वह पढ़ाई से बचने के लिए बहाने बनाता था और लिखने के लिए कुछ मिनट भी स्थिर नहीं बैठ पाता था। टिमोथी के शिक्षक ने उसके माता-पिता को स्कूल बुलाया और इन बातों के बारे में बताया, साथ ही यह भी बताया कि कैसे टिमोथी अभी भी अक्षरों और संख्याओं को नहीं पहचान पाता है और उसकी लिखावट भी ख़राब है। मज़े की बात यह थी कि टिमोथी के माता-पिता ने बताया कि वह घर पर हमेशा बहुत व्यस्त रहता था, ख़ाली बोतलों और कार्डबोर्ड बॉक्स जैसी कबाड़ सामग्री का उपयोग करके खिलौना-घर और अन्य चीज़ें बनाता था। इस बातचीत से शिक्षक को सुखद आश्चर्य हुआ और तब उन्होंने अपनी कार्ययोजना में बदलाव किया। उन्होंने क़लम और काग़ज़ से सम्बन्धित कामों को कम कर दिया और खेल-गतिविधियों पर अधिक ध्यान देना शुरू किया, जैसे कि फोम शीट का उपयोग करके अक्षरों और संख्याओं को काटना और चिपकाना। साथ ही उन्होंने टिमोथी से कहना शुरू किया कि जब भी वह बाहर जाए तो विज्ञापनों और साइनबोर्ड पर लिखे अक्षरों पर ध्यान दे। टिमोथी के माता-पिता और शिक्षक ने देखा कि तरीक़े में बदलाव करने से अक्षरों और संख्याओं में उसकी रुचि बढ़ने लगी।

चित्र 2 : अपनी बनाई रोटी को देखती बच्ची

2. **फ़ाउण्डेशनल स्टेज के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफ-एफएस) 2022** : *एनसीएफ-एफएस* फ़ाउण्डेशनल स्टेज के लिए पाठ्यचर्या का इस प्रकार का पहला ढाँचा है और यह समानता और समावेशन के सिद्धान्त पर बनाया गया है। इसमें विकास के विभिन्न क्षेत्रों में सीखने के परिणामों के लिए सुझाए गए तरीक़ों में समावेशी सामग्री चयन, शिक्षण, आकलन और सीखने के माहौल के लिए दिशानिर्देश शामिल हैं जो प्रारम्भिक बचपन की शिक्षा में समावेशन का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

लोमा 4 साल का था और उसे जंक फूड बहुत पसन्द था, लेकिन उसे घर का बना पौष्टिक खाना बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। स्थिति के गम्भीर होने के कारण लोमा के माता-पिता ने एक व्यावसायिक चिकित्सक की मदद ली, जिन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि लोमा को यह बात अच्छी नहीं लगती थी कि घर पर पकाए गए भोजन के बारे में उससे कुछ नहीं पूछा जाता था।

स्कूल में लोमा के शिक्षकों ने सीखने के जिस परिणाम पर ध्यान देना शुरू किया, वह था– 'पौष्टिक भोजन के प्रति रुचि और समझ दिखाना तथा भोजन बर्बाद न करना।' उन्होंने साप्ताहिक टिफ़िन की सूची बनाने में बच्चों की मदद ली। भोजन के समय, बच्चों को एक साथ बैठने और एक दूसरे के साथ अपना टिफ़िन साझा करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। ऐसा करने से न केवल लोमा को बल्कि कक्षा के अन्य सभी विद्यार्थियों को नए-नए तरह के पौष्टिक भोजन का स्वाद मिला और वे उसे खाने के लिए प्रोत्साहित हुए, जिसका लाभ भी उन्हें मिला।

3. **बाल गतिविधि मैट्रिक्स** : गतिविधि मैट्रिक्स एक दृश्य उपकरण है जो पूरे स्कूल के दौरान शिक्षण-अधिगम के अवसरों को आयोजित करने में सहायक है। कक्षा की दिनचर्या को पहले कॉलम में सूचीबद्ध किया जाता है और विद्यार्थियों के नाम जिन्हें विशिष्ट सहायता की आवश्यकता होती है, सबसे ऊपर वाली पंक्ति में होते हैं। परिणामी मैट्रिक्स का उपयोग प्रत्येक बच्चे हेतु विशिष्ट लक्ष्यों को सूचीबद्ध करने के लिए किया जाता है। इस उपकरण का उपयोग शिक्षक और माता-पिता दोनों के द्वारा यह पहचानने के लिए किया जा सकता है कि बच्चे को कहाँ और कैसी सहायता की आवश्यकता है और उसे यह सहायता कब और कैसे प्रदान करनी है।

तालिका 1 : तीन बच्चों– सोमा, टिमोथी और लोमा के लिए गतिविधि मैट्रिक्स।

गतिविधि	सोमा (5 वर्ष)	टिमोथी (6 वर्ष)	लोमा (4 वर्ष)
सुबह की सभा	साथियों और शिक्षकों का अभिवादन करना	चुपचाप बैठने के समय के दौरान 3 मिनट तक स्थिर बैठना	
सर्कल टाइम	कम्युनिकेशन (संचार) बोर्ड का उपयोग करना	साथियों के साथ नए मॉडल / नई संरचना को साझा करना	अगली साप्ताहिक टिफ़िन योजना के लिए अधिक खाद्य पदार्थों का सुझाव देना
कथा समय	कहानी सुनाते समय इस्तेमाल किए गए चित्रों पर ध्यान देना		खान-पान की आदतों के बारे में कहानी पर आधारित चिन्तनशील प्रश्नों के उत्तर देना
बाहर की गतिविधि	शारीरिक संकेतों का उपयोग करके सहकारी खेल खेलना	रेत के ढेर में अक्षरों को ट्रेस करना	
टिफ़िन का समय	बुनियादी इशारों का उपयोग करके चीज़ों का अनुरोध करना		साथियों के साथ टिफ़िन साझा करना
उभरती साक्षरता	तीन पैनलों के कहानी कार्डों को क्रमबद्ध करना	फोम शीट से अक्षरों को काटना और उन्हें दीवार पर क्रम से चिपकाना	
संवेदी खेल	विभिन्न वस्तुओं (संगीत वाद्य यंत्रों सहित) का उपयोग करके कम्पन का पता लगाना	अक्षर और संख्या इनसेट पज़ल्स के साथ खेलना बेकार सामग्री का संग्रह करना और उनके उपयोग से नई चीज़ें बनाना	
छुट्टी का समय	साथियों से विदा लेना		

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

[1]https://www.cast.org/impact/universal–design–for–learning–udl पर देखें यूनिवर्सल डिज़ाइन फॉर लर्निंग और इसके सिद्धान्तों के बारे में।

आर लालमाछुआनी एक ऑडियोलॉजिस्ट और स्पीच थेरेपिस्ट हैं। साथ ही, वे मिज़ोरम के आइज़ोल में रिडीम गार्डन निजी स्कूल में प्रिंसिपल हैं।

सम्पर्क : teichhuantei@gmail.com

सीखने के स्तरों में विविधता का प्रबन्धन : कुछ रणनीतियाँ

अक्षता एस बेल्लुडी

कलबुरगि के अज़ीम प्रेमजी स्कूल में जिस समय बच्चे प्रवेश लेते हैं, तभी से उनकी विविधता का ध्यान रखने के लिए सजगता से प्रयास किए जाते हैं। प्रारम्भिक कक्षा के शिक्षक के लिए यह सुनिश्चित करना कोई आसान काम नहीं है कि सभी बच्चों का स्वागत अच्छी तरह से हो, और उन्हें अपनी गति से सीखने की क्षमता प्रदान की जाए।

स्कूल में अलग-अलग सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि वाले बच्चे आते हैं। इनमें कृषि मज़दूरों के बच्चे और विश्वविद्यालय के सदस्यों के बच्चे शामिल होते हैं। स्कूल में ग्रामीण और शहरी पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों, एवं प्रवासी मज़दूरों और एकल माता-पिता वाले विद्यार्थियों की संख्या भी लगभग बराबर ही है। कुछ विद्यार्थी ऐसे हैं जिनके बचपन का अनुभव बहुत अच्छा है, वहीं कुछ ऐसे हैं जो इस स्कूल में आने से पहले किसी स्कूल में गए ही नहीं हैं। कुछ बच्चे ऐसे भी हैं जिन्हें लगातार दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा है। इन सबके अलावा, हमारे स्कूल में ऐसे बच्चे भी हैं जिनकी घरेलू भाषाएँ अलग-अलग हैं। जैसे– उर्दू, मराठी, लम्बाणी, कन्नड़ आदि। यही नहीं, कुछ बच्चे तो एक भाषा के अन्तर्गत आने वाली अलग-अलग बोलियाँ भी बोलते हैं।

इतनी विविधताओं के चलते विद्यार्थियों के सीखने के स्तर में काफ़ी अन्तर आ जाता है। अभी, पहली कक्षा में, मेरे पास कुछ विद्यार्थी ऐसे हैं जो तीसरी कक्षा के स्तर की पाठ्य सामग्री आसानी से पढ़ सकते हैं, वहीं कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें मूल ध्वनियों का कोई ज्ञान नहीं है; एक ओर ऐसे विद्यार्थी हैं जो दो अंकों का जोड़-घटाव कर सकते हैं, वहीं दूसरी ओर ऐसे बच्चे हैं जिन्हें अभी भी संख्याओं का बोध नहीं है।

हमें यह सुनिश्चित करना होता है कि शैक्षिक वर्ष के अन्त तक सभी बच्चे आवश्यक दक्षताएँ हासिल कर लें। सीखने की विभिन्न शैलियों वाले 30 अलग-अलग बच्चों के साथ काम करना, वह भी एकल शिक्षक के रूप में, हर दिन एक नई चुनौती लेकर आता है। मैं कुछ ऐसी रणनीतियों का उल्लेख करना चाहूँगी,

चित्र 1: सभी बच्चों को खेल में शामिल करना ज़रूरी

चित्र 2 : घोंसले के बारे में बातचीत

जिन्हें मैंने अपने विद्यार्थियों की सीखने में सहायता करने के लिए आज़माया है।

बहुभाषी सभा

अपने एक विद्यार्थी फ़ैज़ान और उसकी स्कूल व कक्षा में भागीदारी के बारे में यहाँ ज़िक्र करना चाहूँगी। फ़ैज़ान बार-बार बीमार पड़ जाता था, और नियमित रूप से स्कूल नहीं आ पाता था। यह बच्चा अपनी रुचियों और पहचान को खोजने के लिए बहुत जद्दोजहद कर रहा था। उसकी समस्या यह भी थी कि उसके आसपास के सभी लोग कन्नड़ में बात करते थे जिसे वह समझ नहीं पाता था।

इस समस्या को हल करने के लिए, हमने अपनी फ़ाउण्डेशनल स्टेज क्लास (प्री-स्कूल / एलकेजी से दूसरी कक्षा तक) के लिए सप्ताह में एक बार हिन्दी में स्कूल सभा शुरू की। एक बार जब फ़ैज़ान से हिन्दी में सवाल का जवाब देने के लिए कहा गया तब हम उसकी आँखों में झलकती ख़ुशी को साफ़-साफ़ देख पा रहे थे। अब हम सप्ताह में चार दिन तीनों भाषाओं में सुबह की सभा आयोजित करते हैं– दो दिन अँग्रेज़ी में और एक-एक दिन हिन्दी व कन्नड़ में। सभा की गतिविधियों में गायन, नृत्य, कहानी पढ़ना, समाचार पत्र पढ़ना और सभी स्तर के शिक्षार्थियों के लिए पहेलियों के साथ ही सभी बच्चों के शारीरिक विकास के लिए योग, वर्कआउट और व्यायाम शामिल हैं। हम समाचार पत्रों से ऐसी ख़बरों को चुनते हैं जो इस आयु वर्ग के बच्चों को दिलचस्प लगें और वे उनसे जुड़ सकें। जैसे– बाघ का पकड़ा जाना, बारिश और बाढ़, भारतीय खेल टीमों का मैच जीतना, आदि। हम समाचारों पर इस तरह की चर्चाएँ करते हैं जिनसे बच्चों को सोचने, कल्पना करने और उन्हें ध्यानपूर्वक समझने में मदद मिले। बच्चे हर रोज़ शिक्षकों से कम-से-कम मदद लेते हुए ख़ुद ही सभा का संयोजन करते हैं। फ़ैज़ान अब नियमित रूप से स्कूल आने लगा है।

> **"मेरे लिए समावेशन का अर्थ यह है कि मेरे सभी विद्यार्थी सफलता की भावना के साथ घर लौटें, वे सभी अपने क्रियाकलापों में व्यस्त रहें, और अपने पढ़ने-सीखने का आनन्द ले पाएँ।"**

सोचने का समय

अपनी कक्षा में हर बच्चे की सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए हमने यह नियम बनाया है कि सवाल पूछने के अलावा किसी और बात के लिए हाथ नहीं उठाना है। ऐसा नियम इसलिए बनाया गया क्योंकि मुझे एहसास हुआ कि जैसे ही मैं कोई सवाल पूछती हूँ तो वे बच्चे फ़टाफ़ट जवाब देने के लिए तत्पर हो जाते हैं जिन्हें घर में बेहतर अवसर, बेहतर समर्थन और बेहतर शुरुआती बाल्यावस्था देखभाल व शिक्षा (ईसीसीई) का अनुभव मिला है, वहीं बाक़ी बच्चे सोचने की कोशिश तक नहीं करते।

जब मैं कोई सवाल पूछती हूँ तो सभी बच्चों को एक मिनट का 'सोचने का समय' दिया जाता है। शुरू में इसे मॉडल के रूप में अपनाया गया था, लेकिन अब यह हमारी प्रक्रिया का हिस्सा बन गया है। मैं यह सुनिश्चित करती हूँ कि बच्चे सवाल को समझें, इसलिए मैं उनमें से किसी एक को सवाल समझाने के लिए कहती हूँ।

मैं विद्यार्थियों के नाम लिखी हुई आइसक्रीम स्टिक का इस्तेमाल करती हूँ ताकि सवाल का जवाब देने के लिए विद्यार्थियों को रैंडम तरीक़े से चुना जा सके, और सभी को जवाब देने का मौक़ा मिले। और, चूँकि वे जानते हैं कि उनका नाम कभी भी पुकारा जा सकता है, इसलिए वे ध्यान से सुनते हैं। सभी बच्चों को सोचते हुए और फिर अलग-अलग विचारों को प्रकट करते हुए देखना बेहद दिलचस्प अनुभव होता है।

साथियों को सहायता और समर्थन देना

शैक्षिक वर्ष की शुरुआत में, मेरी कक्षा में सीखने के उच्च स्तर वाले बच्चे तो थे ही, साथ ही ऐसे बच्चे भी थे जिन्हें सीखने का कोई अनुभव नहीं था। उनके बीच में एक दूसरे का ध्यान रखने या साझा करने की भावना बहुत कम थी। इसलिए मैंने उनसे इस बारे में बातचीत की, ताकि उन्हें यह समझने में मदद मिल सके कि उन्हें एक दूसरे की मदद क्यों करनी चाहिए। हमने इस बारे में बात की कि घर पर उनकी मदद कौन करता है; हम सभी को सहायता की आवश्यकता क्यों है; कैसे उनके कुछ दोस्तों को घर पर सहायता नहीं मिल पाती है; वे एक दूसरे की सहायता कैसे कर सकते हैं; और यह भी कि जब वे दूसरों की मदद करते हैं तो उनके ख़ुद के सीखने में सुधार होता है।

बच्चे भी बहुत-सी चीज़ें साझा करना चाहते हैं। लेकिन उन सभी को सर्कल टाइम के दौरान शामिल नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हमने 'जोड़ी बनाओ और साझा करो' (pair–and–share) नामक गतिविधि शुरू की, जहाँ वे एक दूसरे के विविधतापूर्ण विचारों को सुनते और साझा करते हैं।

अध्यापन को बच्चों के सन्दर्भ से जोड़ना

हसीना के प्रिय पालतू पशु

हसीना एक नई छात्रा है जिसका शिक्षा सम्बन्धी अनुभव बहुत कम है। उसे कक्षा में बैठना सीखने में ही एक सप्ताह से अधिक समय लगा। अब वह थोड़ी-बहुत अँग्रेज़ी बोल लेती है, हालाँकि बुनियादी ध्वनियों को लेकर उसे अभी भी थोड़ी कठिनाई होती है। हसीना को अपने दोस्तों के साथ मौखिक रूप से अपने अनुभव साझा करना बहुत पसन्द है। ख़ासकर, उसे अपने पालतू जानवरों (अपने पिल्ले और बिल्ली के बच्चे) के बारे में बात करना बहुत अच्छा लगता है। अतः उसकी सहायता करने के लिए मैंने उसके पालतू जानवरों पर एक पाठ तैयार किया। बच्चों को हसीना से उसके पालतू जानवरों के बारे में जानकारी प्राप्त करना बेहद अच्छा लगा। हसीना ने बहुत आत्मविश्वास दिखाया और बड़ी उत्सुकता के साथ उनके बारे में बातें साझा कीं। उसने उस दिन दो नई ध्वनियाँ भी सीखीं।

आइए, अपने गाँव का अध्ययन करें

हमने बच्चों के गाँवों के बारे में जानकारी इकट्ठा की ताकि वे सभी एक दूसरे को बेहतर तरीक़े से जान सकें। दूरदराज़ के गाँवों से आने वाले बच्चों ने कक्षा में अपने गाँवों के महत्त्वपूर्ण स्थानों के बारे में बात की, और फिर बाक़ी विद्यार्थियों ने सवाल पूछकर उनसे और अधिक जानकारी जुटाने की कोशिश की। इससे मेरे विद्यार्थियों के बीच आपस में सीखने और एक दूसरे के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने में भी मदद मिली है।

चित्र 3 : दीवार पर क्या है, अवलोकन करते बच्चे

अभिभावक दिवस मनाना

हर शनिवार को, हमारे बच्चों में से किसी एक के अभिभावक हमारी कक्षा में आते हैं और एक घण्टे के लिए कोई विशेष कौशल सिखाते हैं। जैसे– बुनाई, कोई कारीगरी या फूल बनाना, आदि। इससे बच्चों में अपने अभिभावकों के पेशे या कौशल के बारे में गर्व की भावना पैदा होती है। बच्चे यह भी समझते हैं कि सीखने के लिए कई ऐसी चीज़ें हैं जो भले ही उनके पाठ का हिस्सा न हों, लेकिन वे उनके जीवन और सीखने से जुड़ी हैं। इन सत्रों में, अच्छे गत्यात्मक कौशल वाले बच्चे कार्यों को पूरा करने में दूसरों की मदद करते हैं।

चित्र 4 : अपने-अपने नाम वाली स्टिक

आसपास की प्रकृति की देखभाल

हमारी पहली कक्षा के विद्यार्थी अपने आसपास की प्रकृति की खोजबीन करते हैं। वे बया पक्षी को अपना घोंसला बनाते हुए देखते हैं, कनखजूरे और चींटियों को पानी में डूबने से और घोंघे को कुचले जाने से बचाते हैं। इससे उनमें प्रकृति के प्रति जिज्ञासा और उसका ध्यान रखने की भावना विकसित हुई है।

मेरे लिए समावेशन का अर्थ यह है कि मेरे सभी विद्यार्थी सफलता की भावना के साथ घर लौटें, वे सभी अपने क्रियाकलापों में व्यस्त रहें, और अपने पढ़ने-सीखने का आनन्द ले पाएँ। मैं प्रतिदिन इसका प्रयास करती रहती हूँ। मैं यह दावा नहीं कर सकती कि मेरी कक्षा पूरी तरह से समावेशी है। अपने और अपने विद्यार्थियों की समानुभूति और सुनने के कौशल को विकसित करने के लिए अभी भी एक लम्बा रास्ता तय करना है जो समावेशन का आधार है, प्रयास जारी हैं।

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

सन्दर्भ

Black P. & Wiliam D. (1998). 'Assessment and Classroom Learning.' *Assessment in Education: Principles, Policy & Practice,* 5(1), 7–74.

अक्षता एस बेल्लुडी वर्तमान में कर्नाटक के कलबुरगि में अज़ीम प्रेमजी स्कूल में बतौर एक शिक्षिका कार्यरत हैं। पहले वे कर्नाटक के कोप्पल ज़िले के गंगावती ब्लॉक में एक शिक्षिका थीं, जहाँ उन्होंने सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के काम में उनकी सहायता की। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में आने से पहले वे भारतीय स्टेट बैंक के यूथ फॉर इंडिया कार्यक्रम की फेलो थीं। उन्हें सॉफ़्टवेयर इंजीनियर के रूप में सात साल का कार्य अनुभव भी है।

सम्पर्क : akshatha.belludi@azimpremjifoundation.org

संगीत शिक्षा सभी के लिए

संतोष राज के

जब हम सही योजना और सन्दर्भगत चर्चाओं के साथ कक्षा में संगीत का उपयोग करते हैं तो यह माध्यम विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति करने, सीखने और कुछ नया पता लगाने में बहुत सहायक होता है। यही नहीं, इससे समावेशन के प्रति जागरूकता और उसे लागू करने की असीम क्षमता का निर्माण भी होता है। इस लेख में कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनमें विद्यार्थियों में विभिन्न सन्दर्भों में समावेशिता की मानसिकता विकसित करने की क्षमता का पता लगाया।

जेंडर सम्बन्धी पूर्वाग्रह को सुधारना

लोक संगीत के कार्यक्रमों में (कम-से-कम राजस्थान में) यह देखा गया है कि महिलाएँ वाद्य यंत्र बजाने की अपेक्षा गाने या नृत्य करने में अधिक भाग लेती हैं। विशेष रूप से, जब ताल वाद्य (जैसे– ड्रम) बजाने की बात आती है तो इन्हें चुनने का झुकाव लड़कों की ओर नज़र आता है। इसपर शायद किसी का ध्यान नहीं जाता।

लेकिन सामान्य कक्षा अवलोकन और प्रदर्शनों में जहाँ लय और सुर (पिच, नोट्स) की पहचान से जुड़ी दक्षताओं का लगातार मूल्यांकन और संकलन किया जाता है, उनमें जेंडर प्रतिनिधित्व डेटा बताता है कि ऐसी भी लड़कियाँ हैं जिनमें लय की बहुत अच्छी समझ है, और वे ताल वाद्य (जैसे– तबला, ढोल, आदि) बजाने में असाधारण रूप से अच्छी हैं।

मैंने देखा कि कई लड़कियाँ ड्रम बजाने में रुचि रखती हैं, इसलिए हमने यह सुनिश्चित किया कि लड़कों की तरह ही लड़कियाँ भी अपने कौशल स्तर के आधार पर इसमें भाग ले सकें। इसपर कक्षा में भी चर्चा की गई, और विद्यार्थियों को आश्वस्त किया गया कि यदि वे अच्छा अभ्यास करें तो उनके जेंडर पर ध्यान दिए बिना उन्हें प्रदर्शन करने का अवसर दिया जाएगा। स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर एक मिश्रित जेंडर समूह ने समुदाय के सदस्यों के लिए एक संगीतमय कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इससे स्कूल के कामकाज के अन्य क्षेत्रों में जेंडर सम्बन्धी चर्चा को बढ़ाने, और धीरे-धीरे मानसिकता बदलने के इरादे को भी बल मिला।

गीत दीवार

हमारी कक्षाओं में यह सुनिश्चित किया जाता है कि विद्यार्थियों को गायन का अनुभव मिले, और वे विभिन्न भाषाओं के गीतों से परिचित हों। इसके लिए मैं अपनी कक्षा में 'गीत दीवार' का इस्तेमाल करता हूँ। अँग्रेज़ी, हिन्दी, मारवाड़ी, मलयालम, मराठी, गुजराती, पंजाबी और तमिल भाषाओं में गाने लिखे जाते हैं।

चित्र 1: लड़की हो या लड़का, ड्रम कोई भी बजा सकता है

पढ़ने और समझने में सहायता के लिए उन्हें लिप्यन्तरण के साथ प्रदर्शित किया जाता है। चार्ट पर गाने के बोल बोल्ड टेक्स्ट में लिखे जाते हैं। इन्हें गाने के खण्डों, जैसे पद्य, कोरस, आदि के अनुसार रंग-कोडित किया जाता है ताकि ये आसानी से समझ में आ सकें। ज़ाहिर है, दृश्य सामग्री होने के कारण विद्यार्थियों को इससे सीखने में सहायता मिलती है। और, चूँकि बच्चे बड़ी आसानी से इन्हें जब चाहे देख सकते हैं, इसलिए गीत दीवार उन्हें अपनी गति से सीखने में भी मदद करती है।

समूह प्रदर्शन

अधिकांश विद्यार्थियों के लिए, गायन और वाद्य यंत्र बजाना एक मज़ेदार गतिविधि है। लेकिन यदि उनमें से कुछ को यह पसन्द न हो तो उन्हें सहायक भूमिकाओं में शामिल किया जाता है। जैसे– रंगमंच की सामग्री (प्रॉप्स) तैयार करना, उनका प्रबन्धन करना, आदि।

एक संगीत नाटक के लिए हमने जो मुख्य विचार चुना, वह था– ''भारत अपनी सभी भाषाओं में मौजूद ज्ञान के कारण समृद्ध है।'' हमने तमिल, मराठी, मारवाड़ी और संस्कृत जैसी कुछ भाषाओं से दोहे या पंक्तियाँ चुनीं, उन्हें उनकी मूल भाषा में लिखा, और साथ ही देवनागरी लिपि में उनका लिप्यन्तरण भी किया ताकि सभी विद्यार्थी उन्हें पढ़ सकें। हमने उनके लिए सरल धुनें तैयार कीं, और एक लघु नाटक के माध्यम से उनका अर्थ प्रस्तुत किया।

अपनी जड़ों से जुड़ना

राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत के कई पहलू हैं। इनमें से एक इसका समृद्ध संगीत है। बाड़मेर ज़िला बहुत विशाल है, और यहाँ विभिन्न धार्मिक एवं सम्प्रदायी पृष्ठभूमि के अनेक लोक संगीतकार हैं, इसलिए संगीत की इस पहचान को यहाँ काफ़ी बढ़ावा मिलता है।

लोक संगीत, इसकी जड़ों, विषयों और महत्त्व पर चर्चा करते समय, कई विद्यार्थी अपने गाँव, अपने परिवार / समुदाय के समारोहों, आदि में सुने गए गीतों का उल्लेख करते हैं। उन्हें इन गीतों को प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता है ताकि वे अपने संगीत का अभ्यास कर सकें, और उसके बारे में जानकारी पा सकें।

हमने हाल ही में विद्यार्थियों को एक वृत्तचित्र *इंडस ब्लूज़* दिखाया। इसमें राजस्थान और पाकिस्तान में फैले सिन्धु क्षेत्र के कई समुदायों के बारे में जानकारी दी गई है। स्क्रीनिंग के बाद एक विद्यार्थी ने अपने दादाजी के बारे में बात की जो लोक वाद्य यंत्र 'अलगोजा' बजाते हैं। इसके साथ ही, उसने अपने घर और सामुदायिक समारोहों में इसे सुनने के अपने अनुभव भी साझा किए। एक अन्य विद्यार्थी ने वाद्य यंत्र 'मुरली बीन' के बारे में बताया, जिसे त्योहारों के दौरान उसके गाँव की सड़कों पर सुना जा सकता है।

इस तरह से साझा जड़ों से जुड़ने से निम्नलिखित बातों में मदद मिलती है :

- विद्यार्थी सकारात्मक रूप से अपनी और एक दूसरे की सांस्कृतिक प्रथाओं को समझते हैं, और उनकी सराहना कर पाते हैं।
- शिक्षक के लिए यह सम्भव हो पाता है कि वे स्थानीय समुदायों से संगीतकारों को आमंत्रित करें, और विद्यार्थियों एवं कलाकारों के बीच रचनात्मक चर्चाएँ करवाएँ।
- इससे अपनेपन की भावना पैदा होती है, और आपसी सम्बन्ध मज़बूत होते हैं।

चित्र 2 : बच्चों द्वारा बनाई गई गीत दीवार

जिस क्षेत्र में पुरानी पीढ़ियाँ लगातार धर्म और जाति के आधार पर कलंकित की गई और हाशिए पर धकेली जाती हैं, वहाँ इस प्रकार की अन्तःक्रियाओं से विद्यार्थियों को जो समझ प्राप्त होती है उससे उन्हें समावेशन की दिशा में आगे बढ़ने में सहायता मिलती है। इस बात के काफ़ी उदाहरण आसपास ही देखने को मिल जाते हैं। समाज में कितने ही तरह के भेदभाव हो लेकिन कला व संगीत ने हमेशा सबको जोड़कर रखा है। इसमें सांस्कृतिक विरासत की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

कोई भी पीछे न छूटे

जिन विद्यार्थियों को सीखने की कठिनाइयाँ हैं या कोई शारीरिक अक्षमता है, वे संगीत की कक्षा में साथ-साथ सीखने में आसानी से भाग ले सकते हैं। अन्य विषयों की तरह उनकी ज़रूरतें अलग हो सकती हैं, लेकिन जो शिक्षक इनके प्रति संवेदनशील और जागरूक हों वे अपनी गतिविधियों को इस तरह से अनुकूलित कर पाएँगे कि विद्यार्थी भी उनमें सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

उदाहरण 1 : मैं एक ऐसी गतिविधि आयोजित करता हूँ जिसमें विद्यार्थियों से कहा जाता है कि वे अपनी आँखें बन्द करें, ध्यान से लाइव / रिकॉर्डेड संगीत सुनें, और अपनी पसन्द के हिसाब से कोई ऐसी कल्पना करें जो उन्हें संगीत से जोड़ती हो। इसके बाद उन्हें अपने विचार और कल्पनाएँ साझा करने का समय दिया जाता है। एक समूह में एक ऐसा विद्यार्थी है जिसे सुनने की मशीन (कॉक्लियर इम्प्लांट) लगा है। इस विद्यार्थी को बोलने में भी कठिनाई होती है। वह बेहद सक्रिय है, और कक्षा में बहुत रुचि लेता है। इसलिए अन्य विद्यार्थी उसके उत्साह की सराहना करते हैं ताकि वह अपने विचारों को साझा कर सके। वे उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनते हैं, और उसके शब्दों को समझने की कोशिश करते हैं। यदि कोई शिक्षक ऐसी गतिविधियों को सुगम बना सकें, और उनका मार्गदर्शन कर सकें तो विद्यार्थी ख़ुद ऐसी समावेशिता लाने लगते हैं जो अपेक्षाओं से कहीं अधिक होती है।

उदाहरण 2 : ध्यानाभाव एवं अतिसक्रियता विकार (ADHD) या स्वलीनता (ASD) वाले विद्यार्थियों को अकसर एक सामान्य कक्षा में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। अपने शुरुआती अवलोकनों में भी हम यह देख पाए कि ऑटिज़्म से पीड़ित फ़ाउण्डेशनल स्टेज का एक विद्यार्थी संगीत की कक्षा में लम्बे समय तक शान्तिपूर्वक बैठने लगा था।

ये अवलोकन महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनसे हमें दैनिक गतिविधियों और सीखने में सभी बच्चों को शामिल करने के लिए कक्षा व शिक्षण पद्धति विकसित करने की महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। संगीत शिक्षण में समावेशी तरीक़ों को लाना सम्भव है, और अपनी कक्षाओं में हमें इसके महत्त्व को समझना चाहिए। समावेशन के कुछ घटक ऐसे हैं जिन्हें संगीत शिक्षा के माध्यम से आसानी से प्राप्त किया जा सकता है, वहीं कुछ ऐसे हैं जो जटिल हैं। लेकिन अगर स्कूल के शिक्षकों में आपसी सहमति व समझ हो, और भली भाँति तैयारी की जाए तो यह सम्भव है।

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

सन्तोष राज के अज़ीम प्रेमजी स्कूल, बाड़मेर में संगीत और अँग्रेज़ी के शिक्षक हैं। उन्होंने तमिल और तेलुगु भाषा की कई फ़िल्मों में सहायक संगीत प्रोग्रामर / गिटारिस्ट के रूप में और 'मेक ए डिफ़रेंस' के साथ एड-सपोर्ट स्ट्रैटेजिस्ट के रूप में काम किया है।

सम्पर्क : santhosh.kumaravel@azimpremjifoundation.org

किशन अब ख़ुश रहता है

ओम प्रकाश सिंह

विद्यालयों में हाशियाकृत समुदाय के विद्यार्थियों का अलग-अलग कारणों से अलगाव होना चिन्ता का विषय है। इन कारणों को बारीक़ी से पहचानकर अलगाव को संजीदगी से मिटाने की ज़िम्मेदारी विद्यालय की है। एक विद्यालय की सजग शिक्षिका कई मुश्किलों के बावजूद अपने सहयोगी के साथ, बहिष्कार का सामना कर रहे किशन को विद्यालय के खेल और सीखने-सिखाने के क्रियाकलापों में भागीदार बनाती हैं।

बच्चे शान्त क्यों हैं? कहीं विद्यालय बन्द तो नहीं! जब मैं एक प्राथमिक विद्यालय गया, मेरे मन में यही सवाल चल रहा था। विद्यालय का माहौल शान्त था। ऐसा लग रहा था कि विद्यालय में कोई बच्चा नहीं है। इस विद्यालय में दो शिक्षिकाएँ हैं। एक शिक्षिका बीमार हैं, इसलिए एक ही शिक्षिका पठन-पाठन का कार्य कर रही हैं। विद्यालय के दरवाज़े पर पहुँचकर देखा कि वह अन्दर से बन्द है। सोचा, शायद एक शिक्षिका होने की वजह से उन्होंने दरवाज़ा अन्दर से बन्द किया हुआ है ताकि बच्चे बाहर निकलकर शोर न करें। मैंने दरवाज़ा खटखटाया। एक बच्चे ने खोला। कक्षा में शिक्षिका नहीं थीं, और उसमें 29 में से 22 बच्चे उपस्थित थे। सभी बच्चे अपने-अपने कार्यों में व्यस्त थे। मैंने पूछा, "आपकी शिक्षिका कहाँ हैं?" बच्चों ने जवाब दिया, "वह गाँव में गई हैं, और बच्चों को बुलाने के लिए।" मैंने पूछा, "आपने दरवाज़ा क्यों बन्द किया था?" बच्चों ने बताया कि स्कूल में शिक्षिका न होने से वे दरवाज़ा बन्द करके पढ़ रहे थे। यह अनुभव मेरे लिए नया था क्योंकि इस उम्र के बच्चे उत्साही होते हैं, शोर करते हैं, और आपस में झगड़ते रहते हैं, जबकि इस विद्यालय में यह इतने अनुशासित कैसे हैं? मैं अब बच्चों से ज़्यादा सवाल नहीं करना चाहता था, क्योंकि वे बहुत लगन से बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान (एफ़एलएन) कार्यपुस्तिका पर कार्य कर रहे थे। मैं यह भी नहीं कह सकता कि बच्चे डरे हुए थे। जब-जब बच्चों को कार्यपुस्तिका में कार्य करने में कठिनाई महसूस हो रही थी, वे मुझसे आकर सवाल कर रहे थे। शिक्षिका एक बच्चे को साथ में लेकर आईं। वे मुझे देखकर ख़ुश हुईं और बोलीं, "समुदाय से बच्चों को बुलाने गई थी। जब मैं विद्यालय आई तब सिर्फ़ दो ही बच्चे थे। मुझे सभी बच्चों के घर जाना पड़ा तब जाकर आज 22 बच्चे उपस्थित हुए हैं।" मैंने पूछा, "क्या आपको रोज़ाना बच्चों को उनके घर से बुलाना होता है?" उन्होंने कहा, "नहीं, आज बच्चे समय से आए थे। मैं ही देर से विद्यालय पहुँची हूँ जिसके कारण बच्चे लौट गए थे।"

> लगातार विचार करने पर हमने तय किया कि कक्षा में प्रतिदिन बच्चों को कहानी सुनाई जाएगी, और उसपर चर्चा की जाएगी। अपनी इसी योजना के अनुसार शिक्षिका ने मज़ेदार कहानियों का चुनाव कर बच्चों को कहानियाँ सुनाईं और उनपर बातचीत की।

चित्र 1: बच्चों के भावों का अवलोकन शिक्षक की ज़रूरत

मैं जब भी इस विद्यालय में आता हूँ तो देखता हूँ कि शिक्षिका का व्यवहार बच्चों के लिए बेहद मृदुल है, फिर भी किशन को देखकर लग रहा था कि वह सहमा हुआ है। वह शिक्षिका के साथ चर्चा में भाग नहीं ले रहा था। मैंने प्रयास भी किया कि वह कक्षा में चल रही बातचीत में शामिल हो, लेकिन वह परेशान व असहज दिखने लगा। आख़िर क्यों वह कक्षा की गतिविधि में प्रतिभाग नहीं कर रहा है; क्यों वह दूसरे बच्चों के साथ घुलने मिलने में असहज महसूस कर रहा है? यह सवाल मेरे मन में चल रहे थे। शिक्षिका ने बताया, "यह बच्चा तीसरी कक्षा में है, लेकिन कुछ भी पढ़-लिख नहीं पाता है। यह 'मन्दबुद्धि' है।" मन्दबुद्धि शब्द सुनकर मैं थोड़ा असहज हुआ। मैंने शिक्षिका से जानना चाहा कि उन्होंने कैसे पता लगाया यह बच्चा मन्दबुद्धि है। उनका जवाब था, "वह सभी बच्चों से अलग रहता है,

और कक्षा की गतिविधियों में प्रतिभाग नहीं करता है।" मैं इस विद्यालय में अकसर जाता रहा हूँ, और बच्चे मुझसे परिचित थे। मैंने किशन से बोला, "मण्डी-इ-च्चा।" (कुडुख भाषा में खाना खाने को कहा जाता है। वैसे मुझे कुडुख भाषा नहीं आती है, मैंने इस भाषा के कुछ शब्द बच्चों से ही सीखे हैं।) वह बोला, "नहीं, अभी बाद में खाऊँगा।" उसका जवाब सुनकर महसूस हुआ कि वह एक सामान्य बच्चा है।

आख़िर किशन दूसरे बच्चों के साथ क्यों नहीं रहता?

विद्यालय के बाक़ी बच्चे मुझसे काफ़ी हिले मिले थे। मैंने दूसरे बच्चों से पूछा, "किशन तुम सबके साथ क्यों नहीं रहता है?" बच्चों के अलग-अलग जवाब सुनकर मैं बहुत व्यथित हो गया। एक ने कहा, "इसके घर में सूअर का मीट खाया जाता है इसलिए हम उससे बात नहीं करते।" दूसरे ने कहा, "इसके पिता चिड़िया मारकर खाते हैं।" तीसरे ने कहा, "किशन का परिवार असुर है (झारखण्ड में यह एक प्रकार की आदिम जनजाति है), हम इसकी भाषा को नहीं जानते हैं, तब हम इससे बात कैसे करेंगे!" एक बच्ची ने कहा, "मुझे तो इसे देखकर घृणा आती है, इसलिए मैं उसे कक्षा में अपने पास नहीं बैठने देती।" मैंने पूछा, "घृणा क्यों आती है?" उसने बेहद साधारण अन्दाज़ में कहा, "अरे, आपको नहीं पता! यह बहुत गन्दे रहते हैं। इन्हें कौन छुएगा?"

ऐसा अनुभव इस जनजातीय बहुल क्षेत्र में मेरे लिए एकदम नया था। अब मेरे मन में बस एक ही बात चल रही थी कि किशन को इस परिस्थिति से कैसे निकाला जाए। कैसे बच्चों को समझाया जाए कि वह भी तुम्हारी तरह ही है। शिक्षिका कुछ दूरी पर बैठकर बीच-बीच में हमारी बातें भी सुन रही थीं। उनके चेहरे को देखकर लग रहा था कि वह बच्चों से इस तरह की बातें सुनकर ख़ुश नहीं हैं। आख़िरकार मध्याह्न भोजन के दौरान, मैंने किशन के साथ हो रहे बाक़ी बच्चों के बर्ताव के बारे में शिक्षिका को बताया, और उन्हें विश्वास दिलाया कि अगर बाक़ी बच्चों की तरह किशन के लिए सकारात्मक माहौल बनाया जाएगा तो उसका सीखना भी बाकी दूसरे बच्चों की तरह एकदम सामान्य हो जाएगा।

विद्यालय के माहौल ने किशन को एक शान्त व चुप रहने वाला बच्चा बना दिया था। वह दूसरे बच्चों के साथ न बात करता था न ही मध्याह्न भोजन में उनके साथ खाना खाता था। मैंने शिक्षिका का ध्यान इस ओर दिलाया। अब शिक्षिका का सवाल था, "मैं किशन के साथ अलग से किस तरह से कार्य करूँगी? एक बच्चे के लिए मैं सभी बच्चों को नहीं छोड़ सकती।" मैं शिक्षिका की चुनौतियों को समझ रहा था।

किशन को खेलना बहुत पसन्द है

बच्चों को खेलना बहुत पसन्द होता है। खेलते समय वह भूल जाते हैं कि कौन-सा बच्चा किस धर्म, जाति या समुदाय से आ रहा है। कुछ ऐसा ही आज इस विद्यालय में भी हुआ। जब भाषा व गणित की कक्षाएँ समाप्त हो गईं, शिक्षिका और मैंने बच्चों को कक्षा के बाहर लाकर चूहे-बिल्ली का खेल शुरू किया। खेल में किशन की भी सक्रिय भागीदारी रही। वह जब भी चूहा बना, उसे कोई बच्चा नहीं पकड़ सका। वह बहुत तेज़ भागता था। कक्षा 3 का बच्चा कक्षा 5 के बच्चों की पकड़ में नहीं आ रहा था। अब विद्यालय में सभी को पता चला कि किशन बहुत तेज़ दौड़ता है। शिक्षिका भी इस बात को समझ चुकी थीं कि वह एक सामान्य बच्चा है। अब हमें कक्षा के बच्चों को यह एहसास दिलाना था कि किशन उनका दोस्त है, और शिक्षिका का ध्यान भी अब किशन की तरफ़ था। वह कक्षा में उसके कार्यों का बारीक़ी से अवलोकन कर रही थीं। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि अभी तक जिस बच्चे को वह मन्दबुद्धि समझ रही थीं, वह सामान्य बच्चा है। कक्षा में उसका बाक़ी बच्चों की तरह सीखना नहीं होने का कारण वहाँ उसके प्रति बना नकारात्मक माहौल था। खेलों में किशन की सक्रियता का अवलोकन करने के बाद, शिक्षिका को समझ में आया कि उसका कक्षा में लगातार जुड़ाव न होने का कारण क्या है। उन्होंने देखा कि किशन रोज़ाना समय पर विद्यालय आता है, पर वह कक्षा के बच्चों से घुल मिल नहीं पा रहा है। इसी कारण वह पूरे दिन कक्षा में उदास व अलग-थलग रहता है।

अब शिक्षिका के सामने यह चुनौती थी कि सभी बच्चों के सीखने के स्तर को ध्यान में रखकर किशन के साथ कैसे कार्य किया जाए। कक्षा में क्या किया जाए कि बच्चे उससे घुल मिल सकें। लगातार विचार करने पर हमने तय किया कि कक्षा में प्रतिदिन बच्चों को कहानी सुनाई जाएगी, और उसपर चर्चा की जाएगी। अपनी इसी योजना के अनुसार शिक्षिका ने मज़ेदार कहानियों का चुनाव कर बच्चों को कहानियाँ सुनाईं और उनपर बातचीत की। इन कहानियों में 'अड़ियल गाय', 'चतुर ख़रगोश', 'दोस्त की मदद', आदि शामिल हैं।

'अड़ियल गाय' कहानी सुनने में बच्चों को ख़ूब मज़ा आ रहा था क्योंकि एक-दो पात्रों को छोड़कर इस कहानी में आए सभी पात्र बच्चों के सन्दर्भ से जुड़े थे। बच्चों ने अपने आसपास भी ऐसी गाय को देखा है जो दूध देते समय अपने मालिक को परेशान करती है। बच्चे अपने अनुभव से गाय को सड़क से हटाने की तरक़ीबें सुझा रहे थे। ज़्यादातर बच्चों का कहना था कि पूँछ पकड़कर खींचने से गाय तुरन्त खड़ी हो जाएगी। एक बच्चे ने बताया कि गाय की रस्सी को सबको मिलकर खींचना चाहिए। बहुत देर तक इस कहानी पर बातचीत करने के बाद भी बच्चों से यह जवाब सुनने को नहीं मिला कि गाय को प्यार से घास देने पर वह खड़ी होकर सड़क से हट सकती है।

'चतुर ख़रगोश' की कहानी बच्चों के लिए नई नहीं थी। फिर भी बच्चे इस कहानी का मज़ा ऐसे ले रहे थे मानो पहली बार सुन रहे हों। हालाँकि सुनी हुई कहानी को बीच में रोक कर आगे क्या हुआ होगा, जैसा अनुमान लगाने वाली गतिविधि में बच्चों ने ज़्यादा रुचि नहीं ली। कहानी के बाद बच्चों से बातचीत करने के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

बच्चों से पहला सवाल किया गया, "ख़रगोश ने शेर को कुएँ में कूदने को क्यों कहा होगा?" बच्चों ने जवाब दिया, "शेर जंगल के जानवरों को मारकर खा जाता था। सभी जानवरों की रक्षा के लिए ख़रगोश ने ऐसा कार्य किया।"

दूसरा सवाल था, "जंगल में जब सभी जानवरों ने शेर से समझौता किया था तो फिर क्या ख़रगोश ने जो किया वह सही था?" सभी बच्चों ने कहा, "ख़रगोश ने जो किया वह ठीक था।"

तीसरा सवाल पूछा, "हो सकता है शेर के बच्चे भी हों, और शेर के मर जाने के बाद वे भी भूखे मर गए होंगे! क्या ख़रगोश को समझौता तोड़ना चाहिए था?" इस सवाल पर ज़्यादातर बच्चे चुप थे।

हमने अनुभव किया कि बच्चे कहानी के उस पात्र की तरफ़ ख़ुद को रखकर देखते हैं जो कहानी में कमज़ोर दिखाया गया है। अगर हम 'अड़ियल गाय' कहानी की बात करें तो बच्चों की सहानुभूति गाय के मालिक की तरफ़ थी, जबकि बच्चों को पता था कि मालिक ने गाय को कम चारा दिया है। फिर भी वह बोल रहे थे कि डण्डे से मारने पर गाय खड़ी होकर चल देगी। दूसरी कहानी में भी बच्चों से बातचीत करते हुए जब सवाल पूछा गया कि ख़रगोश ने समझौता तोड़कर अच्छा किया या बुरा, तब ज़्यादातर बच्चों ने जवाब दिया कि अच्छा किया। इन सबपर विचार करते हुए हम इस बात से सन्तुष्ट थे कि किशन भी कहानी की चर्चा में प्रतिभाग कर रहा था। उसने भी अपनी बात रखने का प्रयास किया। हमने अनुभव किया कि अगर कहानी के बाद बच्चों को चर्चा करने का अवसर दिया जाए तो उनकी समझ बेहतर बनती है।

बच्चों के साथ कहानी पर कार्य करते हुए हम समझ चुके थे कि बच्चों की सहानुभूति कहानी में आए कमज़ोर पात्रों के साथ है, लेकिन दैनिक जीवन में वह इसे लागू नहीं कर रहे हैं। समझ बनी कि कहानी सुनाने के साथ कक्षा की दूसरी प्रक्रियाओं में भी बदलाव करने की ज़रूरत होगी।

मध्याह्न भोजन में शिक्षिका का शामिल होना

बच्चों के साथ कार्य करते हुए हमने अनुभव किया कि कहानी सुनाने के साथ हमें कुछ प्रयोग करके भी दिखाने होंगे, ताकि बच्चों को यह एहसास कराया जा सके कि किशन भी उन्हीं की तरह है, और उसे भी दोस्त बनाया जा सकता है। इसके लिए शिक्षिका ने बच्चों के साथ दोपहर का खाना खाने की योजना बनाई। विद्यालय में यह पहली बार हो रहा था कि शिक्षिका बच्चों के साथ बैठकर खाना खा रही थीं। उन्होंने किशन को अपने पास बैठाया। सभी बच्चों को शिक्षिका के साथ बैठकर खाने में अच्छा लग रहा था। इस प्रकार से शिक्षिका लगातार बच्चों के साथ बैठकर दोपहर का भोजन करती रहीं। वह किशन को अपने साथ ही बैठाती थीं। अब किशन शिक्षिका से घुल मिल चुका था, और धीरे-धीरे दूसरे बच्चे भी उससे जुड़ने लगे।

विद्यालय में सब कुछ ठीक चल रहा था, लेकिन शिक्षिका के लिए चुनौती अभी कम नहीं हुई थी। समुदाय यह स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि किशन शिक्षिका के साथ बैठकर खाना खाता है। कुछ बच्चों के अभिभावकों ने शिक्षिका से इस मसले पर बात भी की। इस चुनौती से निपटने के लिए शिक्षिका ने अभिभावक-शिक्षक बैठक में बच्चों के सीखने की प्रगति को साझा करने के साथ-साथ कक्षा के बाहर की जा रही अन्य गतिविधियों में अभिभावकों को भी शामिल करना शुरू किया। किशन की प्रगति और उसके उत्साह को देखकर अभिभावक भी महसूस कर रहे थे कि किशन के साथ-साथ बाक़ी बच्चे भी बेहतर सीख सकते हैं।

"हमने अनुभव किया कि बच्चे कहानी के उस पात्र की तरफ़ ख़ुद को रखकर देखते हैं जो कहानी में कमज़ोर दिखाया गया है।"

प्रतिदिन सभी बच्चों को खेल गतिविधि में शामिल करना

शिक्षिका ने अपने विद्यालय में एक घण्टा खेल के लिए रखा। वह विद्यालय में बच्चों से भाला फेंक, निशानेबाज़ी, कंचे खेलना, आदि खेल करवाने लगीं। किशन इन खेलों में पारंगत था। भाला फेंक में भी वह अपनी कक्षा में बेहतर प्रदर्शन कर रहा था। विद्यालय में स्थानीय खेलों के लगातार आयोजन व किशन के बेहतर प्रदर्शन से विद्यालय के दूसरे बच्चे उससे घुलने मिलने लगे थे।

इसके साथ ही, शिक्षिका ने कक्षा में कुडुख भाषा बोलने और कहानियाँ सुनाने का कार्य जारी रखा। अब विद्यालय में किशन को देखकर अच्छा लगता है। वह सभी बच्चों से घुल मिल रहा है, उनके साथ खेल रहा है, और दूसरे बच्चे भी उससे बातचीत कर रहे हैं।

ओम प्रकाश सिंह ने विभिन्न संस्थानों में लगभग 3 साल तक शिक्षकों व समुदाय के साथ सामाजिक-शैक्षिक मुद्दों पर कार्य किया है। दिसम्बर 2022 से झारखण्ड में गुमला ज़िले के चैनपुर प्रखण्ड में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्यरत हैं। शिक्षकों के साथ मिलकर विद्यालय में बच्चों की सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं में नवाचार करने और उनके अनुभव दर्ज करने में विशेष रुचि है।

सम्पर्क : omprakash.singh@azimpremjifoundation.org

समायोजन से समावेशन

गजालक्ष्मी टी

मेरी कक्षा में कुछ विद्यार्थी बेहद शरारती थे। कक्षा और स्कूल, दोनों जगह पर उनके व्यवहार को बदलना मुझे चुनौतीपूर्ण लगता था। लगभग 50 फ़ीसदी बच्चे इरूलर (नारिकुरावर्गल) समुदाय से आते थे। उनके सीखने की प्रक्रिया पर आसपास के माहौल का बहुत असर था। मसलन, वे स्कूल में थूकते थे, चाकू या ब्लेड जैसी धारदार वस्तुएँ साथ लाते थे, अभद्र भाषा का प्रयोग करते थे, आदि। सीखने की उनकी अलग तरह की ज़रूरतों को पहचानते हुए, सफल होने में उनकी मदद करने के लिए मैंने उनके अनुकूल मदद प्रदान करने पर ध्यान केन्द्रित किया।

सबसे पहले, मैंने उन बच्चों के अभिभावकों से उनके व्यवहार के बारे में बात की। मैंने अभिभावकों को बच्चों द्वारा अभद्र भाषा बोलने को हतोत्साहित करने, और अपने बच्चों के स्कूल बैग में नियमित रूप से धारदार वस्तुओं की तलाशी लेने का सुझाव दिया। फिर बच्चों की हरकतों का ध्यान से अवलोकन करना शुरू किया। इन बच्चों के लिए विशेषतौर पर ऐसी गतिविधियाँ तैयार कीं, जो उनकी ऊर्जा को सकारात्मक तरह से सीखने-सिखाने में लगा सकें। उन्हें कुछ ज़िम्मेदारियाँ दीं, और उनके कामों (अध्ययन सम्बन्धी) को पूरा करने में उनकी मदद की। धीरे-धीरे उनके व्यवहार में बदलाव नज़र आए। मैंने उन्हें उनके व्यवहार और भावनाओं पर नियंत्रण पाने की कुछ तरक़ीबें सिखाईं। जैसे– ग़ुस्सा आने पर गहरी साँस लेना या दस तक गिनती गिनना, आदि। ये तरक़ीबें बेहद प्रभावी साबित हुईं। बच्चों के सकारात्मक व्यवहार को प्रशंसा, विशेष सहूलियतों या छोटे प्रोत्साहनों से पुरस्कृत किया, जिसने उन्हें आगे भी अच्छा व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया।

इरूलर (नारिकुरावर्गल) समुदाय से आने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा तक पहुँच पाने के लिए व्यवहारगत पहलुओं के अलावा बहुत सारी अलग तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। इन सबने उनके सीखने के अनुभवों को काफ़ी प्रभावित किया। इनमें से कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार थीं :

- इस समुदाय के कई विद्यार्थी निम्न आय वाले परिवारों से आते थे। इसके कारण उनके लिए स्कूल की सामग्री, परिवहन (स्कूल आने-जाने) और दूसरे शैक्षिक संसाधनों का ख़र्चा उठाना मुश्किल होता था।
- एक जगह अपना पक्का घर न होने की आवासीय अस्थिरता की वजह से बार-बार एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने के कारण बच्चों की शिक्षा बाधित होती थी। इससे उनके सीखने का क्रम भंग हो जाता था, और अपने साथियों व शिक्षकों के साथ लगातार कोई संवाद या रिश्ते बना पाना उनके लिए कठिन होता था।
- व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों की वजह से उनकी स्कूल में उपस्थिति अनियमित होती थी। इससे भी उनके सीखने की प्रक्रिया में अच्छे-ख़ासे फ़ासले आ जाते थे, और उन्हें अपने सहपाठियों के साथ तालमेल बैठाने में कठिनाई होती थी।
- अपनी पृष्ठभूमि के कारण वे जिस तोहमत, बर्ताव या भेदभाव का सामना करते थे, उसके कारण उनमें अलगाव की भावना पैदा होती थी जो उनके आत्मसम्मान और प्रेरणा के भाव पर बहुत ग़लत असर डालती थी।
- अस्थिरता, आघात, या तनाव के अनुभव अकसर उनमें मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियों के कारण बनते थे, और पढ़ाई-लिखाई में उनकी एकाग्रता, स्कूल में उपस्थिति, और समग्र स्वास्थ्य को प्रभावित करते थे।

कुछ विद्यार्थियों को डिस्लेक्सिया और सीखने की दूसरी अक्षमताओं की वजह से पढ़ने में कठिनाई होती थी। इनकी वजह से उन्हें शब्दों को समझने में परेशानी होती थी। इससे उनमें निराशा व्याप्त हो जाती, और उनकी प्रेरणा जाती रहती थी। कई विद्यार्थियों की होमवर्क, अन्य गतिविधियों और घरेलू कामों से भरी व्यस्त दिनचर्या होती थी, जिससे उन्हें पढ़ने के लिए बहुत कम समय मिल पाता था। इसके अलावा, उनके आसपास का शोरगुल-भरा माहौल पढ़ने पर ध्यान केन्द्रित करना मुश्किल बना देता था। कुछ विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए अनुकूल स्थान, या साथियों और परिवार से ज़रूरी प्रोत्साहन या समर्थन नहीं मिलता था।

इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक ऐसे बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें शिक्षक, माता-पिता और समुदाय के लोग शामिल हों। रोचक सामग्री प्रदान करके, सहायक वातावरण विकसित करके, और जहाँ ज़रूरत हो वहाँ योजनाबद्ध हस्तक्षेप करके, हम शिक्षकों ने पढ़ने से जुड़ी बाधाओं को पार करने में विद्यार्थियों की मदद की। इससे उनमें हमेशा पढ़ते रहने और सीखते रहने की रुचि पैदा हुई।

नियमित संवाद और स्कूल की गतिविधियों में भागीदारी के माध्यम से मैंने अभिभावकों को शैक्षणिक प्रक्रिया में शामिल किया। इससे विद्यार्थियों के लिए सहायता तंत्र को मज़बूत करने में मदद मिली। रोल प्ले, कठपुतली के खेल, नाटक, आदि के माध्यम से मैंने बुलीइंग (बच्चों द्वारा एक दूसरे को डराने / रौब जमाने) जैसी समस्या का समाधान किया, और एक दूसरे के प्रति सम्मान को बढ़ावा दिया। इससे बच्चों में चीज़ों को साझा करना, बारी-बारी से चीज़ें करना और प्रभावी ढंग से संवाद करना जैसे सामाजिक कौशलों का विकास करने में सहायता मिली।

नतीजा यह हुआ कि इन बच्चों के अभिभावकों ने स्कूल पर विश्वास करना, और जब ज़रूरत हो तब शिक्षकों से मिलकर बात करना शुरू कर दिया। बच्चों की व्यवहारगत समस्याएँ लगभग पूरी तरह हल हो गई थीं, और बच्चे एक समूह की तरह एकजुट हो गए थे। अब इन बच्चों के पास लड़ने-झगड़ने और बेवजह घूमने का समय नहीं होता था। वे निरन्तर कहानियों की किताबें पढ़ने, चित्रकारी करने, बागवानी करने, रंग भरने और शिल्पकारी जैसी गतिविधियों में लगे रहते। उन्होंने कक्षा और स्कूल स्तरीय गतिविधियों में ज़िम्मेदारियाँ ले लीं। मसलन, सुबह की सभाओं में भाग लेना, कक्षा का रखरखाव करना, विभिन्न प्रतियोगिताओं में शामिल होना, आदि। इसके अलावा, वे अपने शैक्षणिक कार्यों पर अधिक ध्यान देने लगे।

अँग्रेज़ी से एकलव्य, भोपाल द्वारा अनुवादित।

गजालक्ष्मी टी, सवरयालु नयागर गवर्नमेंट गर्ल्स प्राइमरी स्कूल, पुदुचेरी

स्कूल तो सबका है

कुसुम लता शर्मा

बाक़ी स्कूलों की तरह हमारे स्कूल में भी मध्याह्न भोजन के समय सभी बच्चे एक साथ बैठकर भोजन करने का आनन्द लेते हैं। मैं और बच्चे, दोनों इस व्यवस्था को देखते हैं। मैं भोजन व्यवस्था, खाने के स्वाद, आदि का ध्यान रखती हूँ। बच्चों का काम यह देखना होता है कि सभी बच्चों ने हाथ धोए या नहीं, खाना सफ़ाई से बन रहा है या नहीं, बैठने की व्यवस्था ठीक है या नहीं, आदि। व्यवस्था देखने वाले बच्चों की ज़िम्मेदारी बदलती रहती है।

एक दिन मैं बच्चों के साथ मिलकर व्यवस्था देख रही थी, और ख़ुश थी कि चलो, सब ठीक है। आमतौर पर, सभी व्यवस्थाएँ ठीक पाने के बाद हम सभी साथी शिक्षिकाएँ साथ बैठतीं, कुछ बातें करतीं, और चाय पीतीं। इस दौरान बातचीत में हम बच्चों के शिक्षण, उनके व्यवहार, आदि के बारे में भी बात करते। बातें करते हुए उस दिन मेरा ध्यान बच्चों के बैठने के तरीक़े पर गया। मैंने देखा कि सपेरा बस्ती से आने वाले सभी बच्चे एक लाइन में एक साथ बैठे हैं, मुस्लिम परिवारों से आने वाले सभी बच्चे एक साथ, और बाक़ी बच्चे एक साथ एक अलग लाइन में बैठे हैं। अगले 4-5 दिन तक मैंने इसका अवलोकन किया और पाया कि बच्चे अलग-अलग बैठते हैं।

अब बच्चों के व्यवहार और उनकी बातचीत पर मेरा ध्यान ज़्यादा था। मैंने एक बच्चे से बातों ही बातों में पूछ लिया, "तुम लोग रोज़ सपेरा बस्ती के बच्चों से अलग क्यों बैठते हो? तुम लोगों का क्या कोई झगड़ा हुआ है?" उस बच्चे ने कहा, "नहीं मैम, वो बच्चे दूसरे वर्ग के हैं और कूड़ा बीनते हैं, इसलिए हम उन लोगों के साथ नहीं बैठते।" यह बात मुझे खटक गई। मैंने पूछा, "तुम समीर (जो कि एक मुस्लिम बालक है) के साथ भी नहीं बैठते?" उसने कहा, "नहीं मैडमजी, हम अलग ही बैठेंगे!" अब मुझे थोड़ा सोचना पड़ा कि जब ये सभी एक साथ खेलते हैं तो खाना खाते समय ही क्यों अलग बैठते हैं। मुझे यह ठीक नहीं लगा।

अगले दिन जैसे ही मध्याह्न भोजन की घण्टी बजी, मैं बच्चों के बीच उस जगह चली गई जहाँ वो खाना खाने वाले थे। मैंने कहा, "आज से मैं भी तुम लोगों के साथ ही खाना खाऊँगी।" बच्चे बहुत ख़ुश नज़र आ रहे थे। पर थोड़ी ही देर में कुछ बच्चों के चेहरे की ख़ुशी थोड़ी फीकी पड़ गई जब उन्होंने देखा कि मैं सपेरा बस्ती के बच्चों की लाइन के बीच बैठ गई। मैंने कहा, "मैं रोज़ यहीं खाना खाऊँगी, लेकिन कल दूसरी लाइन में बैठूँगी।" फिर मैंने भोजन माता को कहा कि मुझे भी थाली दो। उन्होंने बाक़ी बच्चों की तरह मुझे भी एक थाली दे दी और उन्हीं की तरह ही खाना परोसा। खाना खाने के बाद मैंने अपनी थाली उठाई, धोई और टोकरे में रख दी। अगले दिन मैं दूसरी लाइन में बैठ गई, और यह क्रम एक सप्ताह तक चला। मैं खाना खाते हुए कुछ सामान्य-सी बातचीत भी करती, जैसे कल शाम को घर पर किसने क्या-क्या किया; होमवर्क किया या नहीं; आदि।

धीरे-धीरे मेरे नज़दीक बैठने के चक्कर में बच्चे आपस में मिल जुल कर बैठने लगे। मैं नोटिस कर रही थी कि अब बच्चे जाति, धर्म या मोहल्ले के अनुसार नहीं, बल्कि जिसको जहाँ जगह मिल रही थी वहाँ बैठ रहे थे, और सब प्यार से खा रहे थे। यह देखकर मुझे सुकून मिला। अब बच्चे पहचान में नहीं आ रहे थे कि वे किस जाति या धर्म के हैं, सब मिलकर खाना खा रहे थे।

हाँ, एक बात और, कभी-कभी छोटे बच्चे घर से भी कुछ खाने को लाते और मुझसे शेयर करते थे। वे अपने हाथ से मेरे मुँह में टुकड़ा डालते, मैं ख़ुशी-ख़ुशी खा लेती, और अपना खाना भी उनके साथ शेयर करती।

एक सप्ताह बाद मैंने महसूस किया कि अब सब मिलकर बैठने लगे हैं, और बैठने की कोई अलग लाइन नहीं है। उसके बाद, मैं 5 दिन के प्रशिक्षण में भाग लेने चली गई। वापस आकर भी बच्चों को एक साथ बिना किसी भेदभाव के मिलकर खाना खाते देख मुझे बेहद ख़ुशी हुई।

इस वाक़िए के बारे में मैंने अपने साथी शिक्षकों से भी बात की। मैंने उनसे सूक्ष्म ढंग से होने वाले इस तरह के भेदभाव को पहचान पाने, और इनको एक मुद्दा बनाने के बजाय बातचीत व क्रियाकलापों के ज़रिए दूर करने के बारे में कहा।

कुसुम लता शर्मा, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, अजबपुर, देहरादून, उत्तराखण्ड

सिखाना वैसे, बच्चे सीखना चाहें जैसे

मधुमालती

बेंगलूरु ज़िला संस्थान के साथ अपने काम के दौरान मैं कई शासकीय प्राथमिक स्कूलों में जाया करता था। उन्हीं में से एक, गवर्नमेंट मॉडल सीनियर प्राइमरी स्कूल, पुट्टनहल्ली (अब बेंगलूरु पब्लिक स्कूल), एक बड़ा स्कूल था जिसमें हज़ार से भी ज़्यादा बच्चे थे। कक्षा 4 में कन्नड़ माध्यम में सभी विषयों को एक शिक्षिका मधुमालती पढ़ाया करती थीं। शिक्षण के क्षेत्र में उन्हें तीन दशकों का अनुभव था। किस बच्चे की क्या ज़रूरत है, उसे किस तरह का मार्गदर्शन चाहिए, वे यह पहचानती थीं, और उसी के अनुसार पढ़ाने की योजना बनाती थीं।

उनके शिक्षण के कई उपयोगी तरीक़ों में से एक था, उनका कक्षा को तीन समूहों में बाँट देना। यथा– बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान (एफ़एलएन) स्तर के विद्यार्थी, मध्यम स्तर के विद्यार्थी, और उच्च उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले विद्यार्थी। वे ऐसा सिर्फ़ अपने पढ़ाने की प्रक्रिया में सहायता के लिए करती थीं। न तो कक्षा में विद्यार्थियों को अलग-अलग बैठाया जाता था न ही किसी विद्यार्थी को बाक़ियों से कमतर या बेहतर महसूस करवाया जाता था। वे बहुत अच्छे से समझती थीं कि बच्चों की सीखने की गति इतनी अलग-अलग क्यों होती है, और जिस तरह के सकारात्मक सुदृढ़ीकरण की उन्हें ज़रूरत होती थी उसी के अनुरूप सीखने की प्रक्रियाओं में वे बच्चों को संलग्न रखती थीं।

वे दो अलग-अलग और सरल प्रश्नावली तैयार करती थीं। वे एक प्रश्नावली विद्यार्थियों को शैक्षणिक सत्र की शुरुआत में देती थीं, और दूसरी सत्र के अन्त में। ये प्रश्नावलियाँ उनके स्वयं के अध्ययन के लिए होती थीं। इससे उन्हें यह समझने में सहायता होती थी कि किस बच्चे को अभ्यास पत्रक (प्रैक्टिस शीट) की आवश्यकता है, किसे उपचारात्मक शिक्षण (रेमेडियल टीचिंग) की, किसे मुद्रित सन्दर्भ सामग्री की, और किस बच्चे को पूरक अभ्यास पत्रक या लाइब्रेरी की किताबों की ज़रूरत है। वे कहती हैं, "हम बच्चों को किस तरह सिखाना चाहते हैं, इसके बजाय जिस तरह वे सीखना चाहते हैं, उस तरह से उन्हें सिखाना चाहिए। बच्चे अपनी क्षमताओं के अनुसार सीखते हैं। अगर हम उनकी ज़रूरतों पर ध्यान दिए बिना ही हर चीज़ का आकलन करेंगे तो सारे प्रयास बेकार जाएँगे।"

उनका लाइब्रेरी सेशन का प्रबन्धन भी देखने लायक़ था। स्कूल में एक बहुत बड़ी लाइब्रेरी थी। इसमें रूम टू रीड द्वारा प्रथम फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित चार स्तरों की बच्चों की किताबें थीं। लाइब्रेरी सेशन के पहले ही शिक्षिका लाइब्रेरी में जाकर अपने विद्यार्थियों के लिए

किताबें निकाल लेतीं, और उन्हें चित्र किताबों, न्यूनतम पाठ वाली कहानी की किताबों, दो भाषाओं वाली, कम चित्रों और अधिक पाठ वाली, और बिना चित्रों वाली कहानी की किताबों में बाँट देती थीं। लाइब्रेरी सेशन के दौरान वे एक कहानी ज़ोर से पढ़कर सुनाती थीं। बच्चों को कहानी समझ में आई है या नहीं, यह जानने के लिए वे उसपर चर्चा करती थीं। बच्चे कहानी को दोबारा सुना सकते थे, और लाइब्रेरी में लगाने के लिए उस कहानी के चित्र भी बना सकते थे। इसके बाद, पढ़ने के लिए बच्चे अपनी पसन्द की कोई भी किताब चुन सकते थे। बच्चों को लाइब्रेरी में एक 'बुक डायरी' रखने, उसमें पढ़ी गई किताब के बारे में अपने विचार लिखने के साथ-साथ अपनी पसन्द की कहानियाँ सुनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता था। इस तरह, पूरी कक्षा को पढ़ने में तल्लीन होते देखना सुखद अनुभव था।

शिक्षिका का कहना है, "हमारे स्कूल में बहुत सारी अच्छी किताबें हैं। उन्हें अलमारी में बन्द करके रखने का क्या फ़ायदा। यदि हम यह समझ जाएँ कि बच्चे को किस तरह की किताब की ज़रूरत है, और उसे वह उपलब्ध करवा दें तो हम उसमें पढ़ने की ललक पैदा कर सकते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम उन बच्चों के साथ बहुत अन्याय करते हैं जिनके घर पर इस तरह की सुविधा उपलब्ध नहीं है। कुछ नहीं तो कम-से-कम बच्चों को किताबों के पन्ने ही पलटकर देखने दें। सभी बच्चे किताबें नहीं पढ़ते। कुछ बच्चे कहानी सुनते हैं, कुछ चित्र बनाते हैं, वहीं कुछ कहानियाँ सुनाते हैं। लेकिन ये सब उनके सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा है। इसलिए कम-से-कम एक मौक़ा तो सभी को मिलना चाहिए।"

अँग्रेज़ी से एकलव्य, भोपाल द्वारा अनुवादित।

मधुमालती, गवर्नमेंट मॉडल सीनियर प्राइमरी स्कूल, पुट्टनहल्ली, कोन्नाकुंटे, बेंगलूरु
(राघवेंद्र हेर्ले, कन्नड़ इनिशिएटिव टीम, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से बातचीत पर आधारित)

सतत प्रयासों से ही सम्भव है शिक्षा में समावेशन

पूनम भाटिया

एक छोटी-सी 7 बरस की बच्ची थी। वह दूसरी कक्षा में पढ़ती थी, और कक्षा में सबसे अलग-थलग रहती थी। मानो वह सबसे छुप जाना चाहती हो। कुछ भी पूछने पर वो ख़ुद में सिमट जाती, और उसकी आँखें भर आती थीं। मैं अभी इस विद्यालय में नई-नई ही आई थी। उस बच्ची को यूँ सहमा हुआ देखना मुझे चिन्तित कर रहा था।

विद्यालय में पहले से कार्यरत शिक्षकों से मैंने उस बच्ची के बारे में बात की, और पूछा कि यह इतनी चुप, गुमसुम और अलग-थलग क्यों रहती है। क्या इसे कोई शारीरिक या मानसिक परेशानी है? बातचीत में पता चला कि बच्ची विद्यालय में प्रवेश के समय से ही ऐसी है। मैंने उसके मम्मी-पापा को बुलाया, और उनसे बातचीत की। उसकी माँ कुछ परेशानी और कुछ तंज़ के साथ बोलीं, "हम ग़रीब लोग हैं, और इसका रंग काफ़ी ज़्यादा गहरा है। कोई इससे क्या शादी करेगा!" मैंने आश्चर्य से पूछा, "आप इसकी शादी अभी ही कर देंगी क्या?" उन्होंने कहा, "नहीं, अभी तो नहीं करूँगी। लेकिन जब भी करेंगे, हम जैसे ग़रीब लोगों के लिए लड़की, वह भी दबे हुए रंग की, बोझ तो है ही।" मैंने उन्हें समझाया और गुज़ारिश की कि आप अपनी बच्ची से आज के बाद रंग-रूप के विषय पर बात मत करना। रही बात इसकी शादी की तो वह जब होनी होगी, हो जाएगी। अभी आप सिर्फ़ इसकी पढ़ाई पर ध्यान दीजिए। मैंने उस बच्ची के माता-पिता से हर 15 दिन में मुझसे मिलने का कहकर उन्हें भेज दिया।

अब मैंने बच्ची के साथ काम करना शुरू किया। उसका रंग बहुत गहरा था। उस छोटी-सी बच्ची के मन में उसके रंग का इतना असर होगा कि उसका समूचा व्यक्तित्व ही मुरझाने लगेगा, ऐसा मैंने सोचा ही नहीं था। लेकिन यह समाज, आसपास के लोग जाने अनजाने ऐसे ही अपना प्रभाव डालते हैं। ख़ैर, बच्ची बातचीत करने के लिए भी मुँह तक नहीं खोलती थी। वह एक शब्द भी नहीं बोलती थी। उससे कुछ भी पूछा जाता तो वह चुप होकर सिर्फ़ देखती रहती थी। धीरे-धीरे मैंने प्रतिदिन उससे बातचीत करनी शुरू की और सभी शिक्षकों को भी कहा कि आप भी उससे सामान्य बच्चों के जैसे व्यवहार करिए, क्योंकि यह बच्ची मानसिक व शारीरिक रूप से पूरी तरह स्वस्थ है। ऐसे बच्चों के साथ हमें थोड़े धैर्य के साथ काम करना पड़ता है। इस बीच, मैंने उसे चित्रों की किताबें और दूसरी छोटी-छोटी किताबें लाकर दीं। वह बच्ची उन किताबों और हमारी बातचीत के साथ धीरे-धीरे सहज होने लगी। हमारे लिए यह एक बड़ी चुनौती थी कि वह स्वयं भी 'ख़ुद को' सामान्य समझे और दूसरे बच्चों के साथ सहज महसूस करे। वह भी दूसरे सारे बच्चों की तरह खेले, कूदे, पढ़े, मस्ती व शरारतें करे। मैं चाहती थी कि वह दबी सहमी न रहे बल्कि अपने मन की बात करे।

मैंने इस विषय के मनोवैज्ञानिक पक्षों को समझा, कुछ किताबें पढ़ीं और कुछ शिक्षाविदों, चिकित्सकों, आदि से भी चर्चा की। इसके बाद हम सब अध्यापकों ने मिलकर सोचा और कुछ उपाय किए। मसलन, कक्षा-कक्षीय गतिविधियों में सब बच्चों के साथ जब हम

खेल खेलते तो उसे भी शामिल करते, गोला बनाने के समय उसका हाथ भी पकड़ते, कक्षा में कभी कुछ ज़रूरत होती तो दूसरे बच्चों के साथ उसे भी बुलाते, कहानी सुनाने के लिए प्रेरित करते, आदि। इसके साथ ही हम उसके माता-पिता से भी लगातार बातचीत करते रहते। समय के साथ ऐसा हुआ कि वह ख़ुद ही आगे आने लगी और कम शब्दों में धीरे-धीरे बोलकर अपनी बात कहने लगी।

एक दिन दबे स्वर में वह मुझसे बोली कि कुछ बच्चे मुझे काली कहकर चिढ़ाते हैं। यह कहते ही उसकी आँखें भर आईं। ऐसी मनोदशा में भला उस बच्ची का मन पढ़ने में कैसे लगेगा जबकि वह अपने अस्तित्व को लेकर ही जूझ रही हो। तब मैंने उससे बातचीत की कि किसी का भी रंग कैसा भी हो सकता है। अगर आप पढ़-लिख लोगी, बेहतर इंसान बनोगी तो सब आपको बहुत मानेंगे। इसलिए अपना ध्यान सिर्फ़ पढ़ाई पर लगाओ। इसके बाद वह सहज होने लगी, खेलने लगी, उत्सव में नृत्य करने लगी, और लिखने-पढ़ने में ध्यान देने लगी। पर यह सब एक दिन में नहीं हुआ। असल में, यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। उस छात्रा ने विद्यालय की अन्तिम कक्षा (8वीं) उत्तीर्ण कर कक्षा 9 में दूसरे विद्यालय में प्रवेश ले लिया है। अब वह समाज की मुख्यधारा में शामिल हो चुकी है। हालाँकि, वह अभी भी बहुत उन्मुक्त नहीं हो पाई है, पर इस बात की ख़ुशी है कि अब वह ख़ुद पर थोड़ा विश्वास करने लगी है। रंग कितना बाधा बनेगा पता नहीं, पर शिक्षा उसे सशक्त बनाएगी ये यक़ीन ज़रूर है।

हमारे समाज के तानेबाने के विविध रंगों से सजे हमारे बच्चे कब, किस परिस्थिति का सामना करने के लिए मजबूर हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। ऐसे में 'समावेशन' शब्द बोलने में तो बहुत आसान लगता है, लेकिन जब इसपर क्रियाकलाप किए जाते हैं तो कई बार कार्य असम्भव-सा लगने लगता है, और कभी-कभी हम अध्यापकों की हिम्मत भी टूटने लगती है क्योंकि इस तरह के कार्यों के परिणाम भी जल्दी ही परिलक्षित नहीं होते हैं।

पूनम भाटिया, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, बंबाला सांगानेर, जयपुर, राजस्थान

"शिक्षा और सम्मान तो सबका हक़ है" – संगीता फरासी

प्रतिभा कटियार

एक इंसानी ज़िन्दगी की कहानी तब सुनने-सुनाने लायक़ बनती है जब उसमें गहरे सामाजिक सरोकार हों, उन सरोकारों को हासिल करने की दृढ़ इच्छा हो, और इस सफ़र में मिलने वाली मुश्किलों से जूझने की दृढ़ता हो। उत्तराखण्ड के श्रीनगर ज़िले के राजकीय प्राथमिक विद्यालय गहड़ की शिक्षिका संगीता फरासी की कहानी उम्मीद के ऐसे ही धागों से बुनी हुई है।

चित्र 1 : साथ मिलकर खेल गतिविधि का आनन्द लेते बच्चे

उत्तराखण्ड के श्रीनगर शहर की एक ख़ूबसूरत पहाड़ी पर एक स्कूल है, राजकीय प्राथमिक विद्यालय गहड़। इस स्कूल में एक कहानी लिखी जा रही है। लिख रही हैं स्कूल की शिक्षिका संगीता फरासी। शिक्षा और सम्मान इस कहानी के मुख्य पात्र हैं। यह कहानी है शहर में भीख माँगकर गुज़ारा करने वालों की बस्ती की। हिक़ारत, दुत्कार के लिए अभिशप्त इस समुदाय की शिक्षा के बारे में न तो कभी राज्य ने सोचा, और न ही समाज ने। दो वक़्त की रोटी की जुगाड़ को भटकते इस समुदाय की ज़रूरतों में शिक्षा सपना भी नहीं रही। फिर इस समुदाय पर चोरी, पॉकेटमारी जैसे आरोप भी लगे। पुलिस कभी भी, किसी भी इल्ज़ाम में इन्हें पकड़ लेती। इसलिए यह कहानी है पढ़ने-लिखने से वंचित किए गए व समाज की तथाकथित सम्भ्रान्त दुनिया से दुत्कारे गए लोगों के बीच एक शिक्षिका के जाने, उनकी चुनौतियों को समझने, और उनका भरोसा हासिल करने की। साथ ही यह कहानी है बच्चों का हाथ थाम स्कूल तक लाने, उन्हें राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं तक पहुँचाने, और पढ़ने-लिखने में रुचि पैदा करने वाली शिक्षिका और आत्मविश्वास से भरे बच्चों की। समावेशन को समझने और उसपर काम करने के लिए जिन दो मुख्य बातों की ज़रूरत है, उन दोनों पर संगीता मैडम लगातार काम करने का प्रयास कर रही हैं। पहली बात समावेशन की ज़रूरत को समझना, यानी उन मुद्दों को देख पाना जो बहिष्करण का कारण बनते हैं, समाज में भी और स्कूल में भी। दूसरी बात है प्रक्रिया। समावेशन इतने सहज ढंग से हो कि किसी को कुछ पता ही न चले, और

तमाम विविध अस्मिताएँ अपनी पहचान के साथ आपस में घुल मिल कर रहें। दस बरस पहले जब संगीता मैडम ने इस दिशा में क़दम उठाया था तो उन्हें नहीं पता था कि सफ़र कितना लम्बा चलेगा, कितना बदलाव आएगा। समावेशन के लिए उनके प्रयासों को दो हिस्सों, सामाजिक बदलाव और अकादमिक प्रयास, के रूप में देखा जा सकता है :

चित्र 2 : सामाजिक-भौगोलिक परिस्थितियाँ पढ़ाई के आड़े नहीं आतीं

सामाजिक बदलाव

सन्दर्भों को समझना : किसी भी समस्या का निवारण जितना ज़रूरी है, उतना ही ज़रूरी है उसके कारणों को समझना। संगीताजी ने यही किया। तब उनके सामने खुली एक ऐसी बस्ती की दुनिया, जहाँ तिरस्कार, शोषण और अन्याय से उपजी ग़रीबी के लिए अभिशप्त लोग भीख माँगकर गुज़ारा करते हैं। मैडम को बात समझ में आई कि जिनके लिए मूल प्रश्न अपना पेट भरने और पहचान का हो, उनसे शिक्षा की बात करने से पहले बहुत कुछ करना होगा। कुछ ऐसा जिससे यह समुदाय भी अपने और अपने बच्चों के लिए सपने देख सके और हमपर भरोसा कर सके।

भरोसा जीतना : समुदाय का भरोसा जीतना बहुत चुनौतीपूर्ण था। संगीताजी ने समुदाय की ज़रूरत को समझा और कहा, "आप सबके बच्चे जितना दिनभर में भीख माँगकर कमाते हैं, उतनी आर्थिक मदद आप सबकी करूँगी। आप अपने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू करो।" और संगीताजी ने बच्चों के अभिभावकों को राशन देना शुरू किया। यह उन्होंने अपने निजी बजट से किया। यह सब करने से पहले मैडम ने बस्ती में रोज़ जाकर उनकी समस्याओं को सुना, समझा, और कुछ हद तक उन्हें हल करना शुरू किया।

नियमितता एक अड़चन : बच्चों का मैडम के पास नियमित आना अभी भी समस्या थी। वे बार-बार भीख माँगने चले जाते थे। कुछ आदत के चलते और कुछ अभिभावकों के दबाव के चलते। इस समस्या पर मैडम ने दो तरह से काम किया। पहला, उन्होंने समुदाय के लोगों विशेषकर माँओं से कहा कि जिसका बच्चा नियमित स्कूल आएगा उसकी माँ को 'बेस्ट मॉम अवॉर्ड' दिया जाएगा। इस अवॉर्ड में राशन और कपड़े भी दिए जाएँगे। यह सब ख़र्च संगीताजी ख़ुद वहन कर रही थीं। दूसरे, उन्होंने सब इंस्पेक्टर संध्या को अपनी समस्या के बारे में बताया। उपाय के तौर पर सब इंस्पेक्टर संध्या को जब भी बच्चे भीख माँगते दिखते, वे उन्हें प्यार से समझाकर मैडम के पास भेज देतीं।

इन उपायों से बच्चों की नियमितता बढ़ी। ज़ाहिर है, इसका बहुत असर उनके अच्छा पढ़ने-लिखने और अन्य बातें सीखने के अवसरों पर भी पड़ा। बेस्ट मॉम का पहला अवॉर्ड मिला था अंकुल की माँ को। अंकुल अब हाई स्कूल की परीक्षा दे रहा है और बस्ती के बाक़ी बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने के साथ ही उनकी मदद भी करता है।

स्कूल के लिए तैयारी : बच्चों का नियमित आना अभी मैडम के घर तक ही था। यहाँ मैडम बच्चों के साथ कुछ खेल खेलतीं, कहानियाँ सुनातीं, पढ़ने-लिखने के मायने समझातीं। स्कूल जाने का सिलसिला अभी शुरू नहीं हुआ था। स्कूल जाने की तैयारी में उन्हें आपस में व शिक्षकों से बात और व्यवहार करना सिखाना ज़रूरी था। उनके लिए स्कूल ड्रेस, बस्ता, किताबें, जूते, आदि की व्यवस्था की जानी थी। इनमें सामान की व्यवस्था करना अब आसान होने लगा था क्योंकि शहर के कुछ लोग इस मुहिम में साथ देने आगे आने लगे थे। मुख्य दिक़्क़त थी व्यवहार की, भाषा की। बातचीत में गाली देना सामान्य बात थी क्योंकि बच्चे इसी माहौल में पले-बढ़े थे। बड़ों से कैसे बात करनी होती है नहीं जानते थे। चिन्ता यह भी थी कि अगर यह सब बदला नहीं तो स्कूल में जो बाक़ी बच्चे आ रहे हैं, उन्हें और उनके अभिभावकों को परेशानी भी हो सकती है। संगीताजी बताती हैं, "मेरे पास

> "संगीता फरासी एक मेहनती अध्यापिका हैं। उन्होंने जिस तरह अभिभावकों को विश्वास में लेकर बच्चों को स्कूल तक लाने का प्रयास किया है वो वस्तुतः किसी संस्था के पूर्णकालिक काम के समान कहा जा सकता है। बच्चों के लिए अपने संसाधनों से स्कूल आने-जाने की व्यवस्था सुनिश्चित करना, और शाम को अपने घर पर उन्हें पढ़ाना प्रेरणा देता है। बस्ती के परिवारों से उन्होंने जो आत्मिक रिश्ता बनाया है, उनका भरोसा जीता है वो अपने-आप में विशेष है।"
>
> *अश्विनी रावत, खण्ड शिक्षा अधिकारी खिर्सू, ज़िला पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड*

इसके लिए दो ही चीज़ें थीं– एक धैर्य और दूसरा प्रेम। मैं जानती थी इस बदलाव में वक़्त लगेगा। हालाँकि कई बार मैं भी कमज़ोर पड़ जाती थी, लेकिन फिर मासूम चेहरे याद आ जाते और मुझे ऊर्जा मिलती।"

कुछ तो लोग कहेंगे : एक तरफ़ चुनौती थी बच्चों को स्कूल लाना, पढ़ाना, इसके लिए उन्हें तैयार करना, उनके घर वालों की मुश्किलें समझना, समाधान निकालना और भरोसा जीतना। दूसरी तरफ़ चुनौती थी लोगों का यह कहना, "यह तो पागलपन है;" संशय करना, "ज़रूर इनाम लेने के लिए कर रही होंगी, ज़्यादा दिन नहीं करेंगी"; ''घर से पैसे लगाकर कितने दिन कर पाएँगी''; "इसके पीछे ज़रूर कोई और मंशा होगी"; आदि। ऐसा भी नहीं कि संगीताजी पर इसका कोई असर न पड़ता हो, वो उदास न हुई हों, टूटी न हों, लेकिन उनका साथ दिया उनके परिवार ने। वे मन-ही-मन सोचतीं, "कुछ तो लोग कहेंगे", और मुस्कुराकर बस्ती की तरफ़ चल पड़तीं।

बच्चों को नए अनुभव देना : पढ़ना सिर्फ़ स्कूल में नहीं होता है, न सिर्फ़ किताबों से। संगीताजी इस बात को जानती थीं, और उन्होंने बच्चों की ज़िन्दगी में नए अनुभवों को शामिल करना शुरू किया। ऐसे अनुभव जो उनके जीवन में अब तक नहीं थे। मसलन, आसपास की जगहों को देखने जाना, उनके बारे में बच्चों से बातचीत करना, कार में बैठकर घूमना, मेज़-कुर्सी पर बैठकर खाना, टीवी देखना, आदि। ऐसे ही अनुभवों में एक अनुभव था बच्चों को कुछ खिलाने के लिए होटल ले जाना। जिस होटल के दरवाज़े के बाहर से ही भगा दिए जाते हों, वहाँ निडरता से जाना, टेबल पर मिल बैठ कर खाना, पार्टी करना एक नई दुनिया के खुलने जैसा था। वो बताती हैं, "उस दिन मैं बच्चों के साथ एक होटल में थी। तेज़ बारिश हो रही थी। एक बच्चा होटल के शीशे के इस पार से बारिश देख रहा था। एकदम चुप, एकटक। मैंने उससे पूछा, 'इतने ग़ौर से क्या देख रहे हो?' उसने भरी-भरी आँखों से मुझे देखा और कहा, 'आज आपकी वजह से हम यहाँ हैं। बारिश में जब सारा शहर भीग रहा है, हम नहीं भीग रहे। कोई और दिन होता तो हमें सिर छुपाने के लिए भी कोई यहाँ खड़ा नहीं होने देता। हर कोई हमें डाँटकर भगा देता।'' उस बच्चे की आँखों में क्या था, पता नहीं। लेकिन संगीता मैडम की आँखें आज भी उस घटना के ज़िक्र भर से छलक पड़ती हैं।

अकादमिक प्रयास

स्कूल जाने से पहले, स्कूल से आने के बाद : बच्चे संगीताजी से हिल मिल गए थे, अभिभावक भी उनपर भरोसा करने लगे थे, लेकिन इतना-भर काफ़ी नहीं था। बच्चों की स्कूल जाने की तैयारी भी होनी थी। तो कभी बस्ती में जाकर और कभी बच्चों को घर बुलाकर उनकी पढ़ाई-लिखाई शुरू हुई। इस मुहिम में रेखा और अनिल नाम के युवाओं ने साथ दिया, और शांतिजी ने न सिर्फ़ साथ दिया, हौसला भी दिया। संगीताजी ने बताया "हम लोग बच्चों को रोज़ थोड़ी देर पढ़ाते थे। कोशिश यह होती कि इस पढ़ाई-लिखाई से उन्हें ऊब न हो। कभी उनकी पसन्द के खेल होते, कभी गाने होते, खाना-पीना होता, लेकिन साथ में होतीं किताबें। कहानियों और कविताओं से बात शुरू होती और अक्षर पहचान व रोज़मर्रा के जीवन में इस्तेमाल होने वाले गणित से जा जुड़ती। बच्चों के लिए यह मज़ेदार था कि खेल-खेल में किसने किसको कितने धक्के मारे, किसने कितनी रोटी खाई, यह भी गणित है।" बच्चों का जीवन बदलने लगा था। स्कूल की यूनिफ़ॉर्म में तैयार बच्चे मैडम द्वारा लगाई गई मोटरगाड़ी में बैठकर स्कूल जाते, दिनभर स्कूल में खेलकूद, पढ़ाई, और वापस मैडम के घर जहाँ मिलता बढ़िया भात। ये सिलसिला बरसों से ऐसे ही चल रहा है। अब भी बच्चे स्कूल के बाद मैडम के घर में देखे जाते हैं, जहाँ खाना खाते हैं, पढ़ाई होती है, खेलते हैं, टीवी देखते हैं। बच्चों के बस्ते मैडम के घर पर ही रहते हैं। यहीं से सुबह फिर बच्चे बस्ते लेकर गाड़ी में बैठकर स्कूल जाते हैं।

इन बच्चों के स्कूल आने से पहले स्कूल में बच्चों की संख्या 11 थी और अब 23 है। लेकिन यहाँ बात नामांकन बढ़ने से आगे की है। बच्चों में कोई भेदभाव नहीं है, अभिभावकों को भी कोई परेशानी नहीं है, सब मिलकर प्रेम से खेलते हैं, पढ़ते हैं।

सन्दर्भ से जोड़कर पढ़ाना : मैडम हर बच्चे को गले लगाती हैं, सिर पर हाथ फेरती हैं, और उनका हौसला बढ़ाती हैं। हाँ, यही है उनकी शिक्षण विधि का पहला हिस्सा। यही है उनका अपनी

चित्र 3 : बच्चों के आने-जाने के लिए शिक्षिका द्वारा की गई गाड़ी की व्यवस्था

चित्र 4 : दक्षता-आधारित समूहों पर काम करतीं शिक्षिका

पेडागोजी के लिए बालमित्र वातावरण बनाना। बच्चे मैडम से अपनापन महसूस करने लगे हैं और उनके द्वारा सीखने-सिखाने के लिए करवाई जा रही हर गतिविधि में उत्साह से भागीदारी करने लगे हैं।

जब तक बच्चों के सन्दर्भों को नहीं समझेंगे, सीखने-सिखाने के बीच एक दूरी रहेगी ही। इसका एहसास मुझे उस रोज़ स्कूल पहुँचकर हुआ। दो कमरे और एक छोटे से बरामदे वाले स्कूल में बच्चे व्यवस्थित ढंग से अलग-अलग समूहों में पढ़ रहे थे। संगीताजी बच्चों के बीच बैठी हुई थीं। उनके चारों तरफ़ अलग-अलग घेरे थे। ये अलग-अलग दक्षता स्तर के बच्चे थे, और वो सबके साथ, बारी-बारी से काम कर रही थीं। मैंने बच्चों से दोस्ती की, कुछ बच्चे शरमाए, लेकिन जल्दी ही दोस्त बन गए। मैं कक्षा 1 के बच्चों के उस समूह के पास बैठ गई जो अभी वर्णों से शब्द बनाना और शब्दों में वर्ण पहचानना सीख रहे थे। सोचा, जो ये पढ़ रहे हैं उसी के बारे में क्यों न बात की जाए! मैंने पूछा, "अच्छा, 'ब' से और क्या-क्या होता है?" बच्चों ने ज़रा भी देर किए बिना बताना शुरू किया... बारिश, बकरी, बेकार, बकबक, बदबू, बेर। फिर 'क' से कबूतर कहीं जा उड़ा, और जो शब्द आए वो थे... कूड़ा, कचरा, काना, कल्लू, कचूमर, कद्दू। बच्चों को उनके सन्दर्भ से जोड़कर पढ़ाया जाना ज़रूरी है, यह सन्दर्भ यहाँ ठीक-ठीक खुल रहा था। फिर कुछ देर गणित के मौखिक सवालों पर काम किया जिससे बच्चे जोड़-घटाना समझ सके। बाद में बच्चों से पूछा, "तुम्हें खाने में क्या पसन्द है?" बच्चों ने कहा... दाल, चावल, भात, दाल, दाल-भात, खिचड़ी... बस इतना ही।

टीएलएम का उपयोग और एक दूसरे से सीखना : संगीता मैडम बच्चों के मन को समझने की कोशिश करतीं जिससे उन्हें पढ़ना अच्छा लगे। उन्होंने खेल गतिविधियाँ, खिलौने और साथ में टीएलएम आदि का इस्तेमाल करना शुरू किया। कुछ जोड़ना था, कुछ घटाना था, कुछ शब्दों के खेल खेलने थे, कहानियाँ सुननी थीं, सुनानी थीं और लिखने-पढ़ने की ओर बढ़ना था। प्रोत्साहन का जादू ख़ूब चल रहा था। एक बच्चा कुछ सीखता तो उसे वही बात दूसरे को सिखाने को कहतीं। उन्होंने ऐसे समूह बनाए जिनमें अलग-अलग दक्षता वाले बच्चे भी थे जो एक दूसरे से सीख रहे थे। पढ़ना और लिखना बोझ न लगे, मज़ेदार लगे, इसका पूरा ध्यान उन्होंने रखा। तमाम समस्याओं के बीच अब बच्चों को सहजता से लिखना-पढ़ना आने लगा है।

स्कूल संसाधन और प्रबन्धन सब बच्चों के हवाले : स्कूल में दो कमरे हैं। एक कमरा मिला जुला रीडिंग रूम व लाइब्रेरी का है जिसमें आयु समूह अनुसार बच्चों के लिए विविध रोचक किताबें हैं। यहाँ बच्चों के पढ़ने के लिए अच्छी बैठक व्यवस्था है। लाइब्रेरी का संचालन बच्चे ही करते हैं। दूसरे कमरे में हिन्दी, अँग्रेज़ी, गणित, ईवीएस, आदि विषयों के तरह-तरह के टीएलएम, प्रोजेक्ट, मॉडल हैं जिन्हें बच्चों ने मैडम के साथ मिलकर बनाया है। बच्चे इनके बारे में विस्तार से बात कर लेते हैं, और बता पाते हैं कि किस प्रोजेक्ट का मतलब क्या है। इस कमरे में एक कम्प्यूटर है जिसका उपयोग बच्चे ही करते हैं। उन्हें पता है किस लिंक पर कौन-सी कहानी मिलेगी, और कहाँ सवालों के बारे में बात होगी। वे पूरे आत्मविश्वास से कम्प्यूटर चलाते हैं, और डेटा के लिए मैडम का फ़ोन ले आते हैं। मैडम

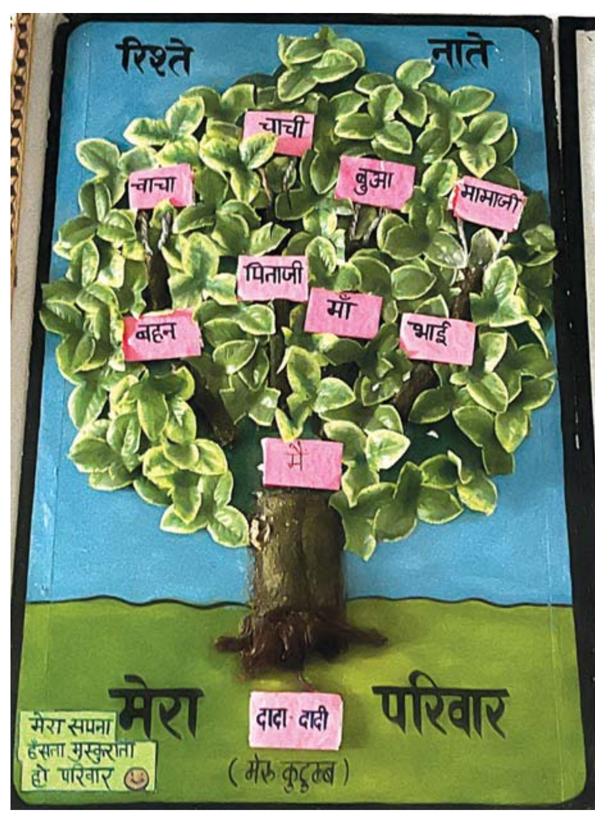

चित्र 5 व 6 : बच्चों और शिक्षकों द्वारा बनाए गए टीएलएम

का फ़ोन तो जैसे बच्चों का अधिकार क्षेत्र है। मैडम भी ख़ुशी-ख़ुशी अपना फ़ोन उन्हें दे देती हैं।

इस तरह आपसी समन्वय से यहाँ शिक्षण भी होता है और खेल भी। यही वजह है कि स्कूल के 4 बच्चे राज्य स्तरीय खेलों में प्रतिभाग करने जा रहे हैं। समाज में भले ही तरह-तरह के भेदभाव का व्यवहार हो, लेकिन स्कूल में इसकी कोई जगह नहीं है। सारे बच्चे एक दूसरे के साथ खेलते हैं, पढ़ते हैं और खाते हैं। वे एक दूसरे की सीखने में मदद भी करते हैं। इसके लिए मैडम ने बच्चों के अलग-अलग समूह बनाए हैं। इनमें सारी अस्मिताओं के बच्चे शामिल हैं। पढ़ाई के समूह खेल के समूहों से अलग हैं। महत्त्वपूर्ण है कि स्कूल के वातावरण में भेदभाव की कोई गुंजाइश ही नहीं। बच्चे कहने से ज़्यादा देख समझ कर सीखते हैं, और इसे यहाँ बख़ूबी देखा जा सकता है।

"यहाँ एक बगिया है जिसे बच्चों ने बनाया है", बताते हुए संगीताजी ने मेरे सामने लाल चाय का गिलास बढ़ा दिया। "इसमें बच्चों के लगाए पेड़ का नींबू है", कहते हुए मैडम की आँखें मुस्कुरा रही थीं, और सामने मुस्कुरा रहा था बच्चों के हाथों से रोपा और सहेजा गया नींबू का पेड़।

हर बच्चे का सम्मान है : 'ये बच्चे', 'इनके घर वाले', 'इनसे', 'ये लोग' जैसे सम्बोधन बच्चों या उनके घरवालों के लिए करना ठीक नहीं। बच्चे कहते कुछ नहीं, लेकिन सुनते तो हैं, और उन्हें इस बात का बुरा भी लगता है। इस तरह के सम्बोधन उन्हें अलग तरह से श्रेणीबद्ध करते हैं। संगीताजी इस तरह के सम्बोधनों का न तो ख़ुद उपयोग करती हैं न किसी को करने देती हैं। बच्चों के सम्मान में ज़रा-सी भी कमी उन्हें एकदम सहन नहीं।

पढ़ने-लिखने में अलग से सहयोग : पढ़ने-लिखने का सफ़र भी आसान नहीं रहा। लेकिन ये सभी बच्चे किसी से कम नहीं हैं, यह बात समझना भी ज़रूरी था। उन्होंने लोगों के साथ मिलकर बच्चों को अलग से पढ़ाना शुरू किया। इस पहल ने ब्रिजिंग का काम किया। धीरे-धीरे बच्चों का सीखना गति पकड़ने लगा। जब कोविड आया तो लगा अब यह सिलसिला टूट जाएगा। लेकिन कोविड में भी सारे नियमों का पालन करते हुए बच्चों का पढ़ना-लिखना जारी रहा।

जो शहर बहुत कुछ कहता था : संगीताजी कहती हैं, "शहर जो मेरे काम को एक पागलपन का नाम दिया करता था, या कुछ को लगता था कि ये सब ज़्यादा दिन नहीं चलेगा, या मैं यह सब वाहवाही लेने या पुरस्कार पाने के उद्‌देश्य से कर रही हूँ, धीरे-धीरे इन सारी ग़लतफ़हमियों से पर्दा हटता गया, और जो लोग सन्देह करते थे अब साथ देने लगे हैं। बच्चों ने मुझे इतना प्यार दिया है, मुझ पर इतना भरोसा किया है कि मेरी आँखें भीग जाती हैं। एक बार मैं बीमार पड़ी, स्कूल नहीं जा सकी तो स्कूल के बाद बच्चों ने मेरा ख़ूब ध्यान रखा। कोई जूस निकालकर ला रहा था, कोई फल काटकर खिला रहा था, और कोई मेरे लिए चाय बना रहा था।" लोगों के मन में सवाल आ सकता है कि अपने पास से पैसे ख़र्च करके, अपना समय और ऊर्जा लगाकर कोई क्यों काम करेगा भला! लेकिन मुझे जो सन्तुष्टि मिलती है बच्चों को पढ़ते देख वो बेशक़ीमती है। मेरे लिए यह आसान नहीं होता अगर मेरा परिवार मेरा साथ न देता। साथ देते हैं स्कूल के बाक़ी साथी भी। प्रिंसिपल ललित मोहन बिष्ट कहते हैं, ''मैडम बहुत अच्छा काम कर रही हैं। मैं जितना सम्भव हो उनके प्रयासों में साथ देने का कोशिश करता हूँ।'' भोजनमाता सुनीता देवी कहती हैं कि, ''मैडम सब बच्चों को अपने बच्चों जैसा प्यार करती हैं और सबका बहुत ख़्याल रखती हैं।''

कुछ अफ़सोस, कुछ उम्मीद : सब ठीक चल रहा है, लेकिन अभी बहुत कुछ ठीक होना बाक़ी है। आसपास के स्कूल इन बच्चों को अपने यहाँ दाख़िला नहीं देते। अभी और बच्चे हैं जिनका स्कूल जाना बाक़ी है। टुकड़ों में मदद करना या प्रशंसा करना अलग बात है, लेकिन बच्चों को दिल से अपनाना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। उसमें अभी कमी है। मेरे पास बच्चे पाँचवीं तक ही तो पढ़ सकते हैं, लेकिन उनका सफ़र तो लम्बा है। सबको यह बात समझना ज़रूरी है कि शिक्षा उनका अधिकार है। मुझे बहुत अफ़सोस है कि मेरे स्कूल का एक बच्चा, अंकुल, किसी और स्कूल में दाख़िला न मिलने के कारण दसवीं की प्राइवेट परीक्षा दे रहा है, जबकि उसे स्कूल में दाख़िला मिलना चाहिए था। मैं चाहती हूँ कि अंकुल की पढ़ाई पूरी हो, उसे नौकरी मिले जिससे इस समुदाय को भरोसा हो कि इस दुनिया में उनका भी उतना ही हिस्सा है जितना बाक़ी सबका। सम्मान की रोटी कोई ख़्वाब नहीं है। अभी तो शुरुआत है, यह सफ़र अभी लम्बा है...

> "शिक्षा, सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन है। समतामूलक और समावेशी शिक्षा न सिर्फ़ स्वयं में एक आवश्यक लक्ष्य है बल्कि समतामूलक और समावेशी समाज निर्माण के लिए भी अनिवार्य क़दम है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को सपने सँजोने, विकास करने, और राष्ट्र हित में योगदान करने का अवसर उपलब्ध हो।"
>
> *– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*

प्रतिभा कटियार 14 वर्ष हिन्दी प्रिंट मीडिया में पत्रकारिता करने के बाद अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथ जुड़कर काम कर रही हैं। इनकी 4 पुस्तकें प्रकाशित हैं और दो कहानियों पर लघु फ़िल्मों का निर्माण हुआ है। अंडमान पर लिखा यात्रा संस्मरण और कविता 'ओ अच्छी लड़कियो' कर्नाटक के रानी चेनम्मा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल है। इनकी कविताओं का गुजराती, मराठी और अँग्रेज़ी में अनुवाद हुआ है।

सम्पर्क : pratibha.katiyar@azimpremjifoundation.org

कुछ अलग सी गिन्नी!

समीक्षा : शारुन सनी

लेखिका : विनीता कृष्णा

चित्रकार : सुविधा मूर्ति

आयु वर्ग : 3 वर्ष और उससे अधिक

पृष्ठ संख्या : 20

भाषा : अँग्रेज़ी (हिन्दी में भी उपलब्ध)

प्रकाशक : गिन्नीज़ प्लैनेट प्राइवेट लिमिटेड

कुछ अलग सी गिन्नी! एक छोटी लड़की की दिल को छू लेने वाली कहानी है। यह लड़की अपनी शारीरिक भिन्नता को स्वीकार करती है, और आसपास के लोग भी उसे स्वीकार करते हैं। विनीता कृष्णा द्वारा लिखित और सुविधा मूर्ति द्वारा चित्रित यह कहानी आठ साल की गिन्नी की शारीरिक चुनौतियों का बारीक़ी से परिचय कराती है। यह पुस्तक हिन्दी से अनूदित है जिसका शीर्षक है *कुछ अलग सी गिन्नी।* गिन्नी का जन्म रेडियल क्लब हैंड के साथ हुआ था, और कुल मिलाकर, उसके दोनों हाथों में दस की बजाय नौ अंगुलियाँ हैं। मोटे चश्मे और कलाई के ब्रेस के साथ गिन्नी को ऐसी बाधाओं का सामना करना पड़ता है जो शायद बेहद कठिन लगें। लेकिन अपनी ख़ुशमिजाज़ी और अनूठी प्रतिभा के कारण वह दूसरों से दोस्ती करने, और उन्हें ख़ुशी देने में सफल रहती है।

पुस्तक में, समावेशी वातावरण बनाने में समानुभूति, स्वीकृति और सौम्य हास्य की भूमिका को ख़ूबसूरती से दर्शाया गया है। गिन्नी की शारीरिक भिन्नताएँ दूसरों के साथ बातचीत करने या मेलजोल रखने में कोई बाधा नहीं डालती हैं। यह बात पाठकों के लिए एक बड़ी सीख है। पुस्तक के चित्र आकर्षक हैं, और पात्रों के मूड को शानदार ढंग से प्रकट करने में समर्थ हैं।

अपने हेयरबैंड के संग्रह के साथ ड्रेस-अप या सजने का खेल खेलने से लेकर क़ुतुब मीनार का मॉडल बनाने तक की हर बात में गिन्नी की रचनात्मकता और उत्साह झलकता है। वह अपने दोस्तों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करती है कि वे बारिश में खेलने का आनन्द लें। इससे यह ज़ाहिर होता है कि वह हर स्थिति में सकारात्मकता देखने में सक्षम है। बारिश में खेलते बच्चों का मनमोहक वर्णन, कल्पना की शक्ति और जीवन के सरल सुखों को अपनाने की ख़ुशी को उजागर करता है। कहानी सुनाने के बाद, शिक्षक अपनी बातचीत में यह तथ्य भी उजागर कर सकते हैं ताकि बच्चों को यह पहचानने में मदद मिल सके कि मौज़ मस्ती करना भी ज़रूरी है।

शिक्षक इस पुस्तक का उपयोग शारीरिक और सीखने सम्बन्धी अन्तरों के बारे में चर्चा शुरू करने के लिए कर सकते हैं। मसलन, आपको क्या लगता है कि गिन्नी दूसरों से शारीरिक रूप से अलग होने के बावजूद आत्मविश्वासी क्यों महसूस करती थी; या उसके दोस्तों ने उसे कैसे स्वीकार किया; आदि। ऐसे सवाल विद्यार्थियों को अपने स्वयं के अनुभवों और दृष्टिकोणों पर विचार करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। इससे बच्चों को यह समझने में भी मदद मिल सकती है कि हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं जो विविधताओं से भरी है, और यही विविधताएँ इस दुनिया को सुन्दर बनाती हैं। कक्षा में इस तरह की बातचीत से इस बारे में जागरूकता और संवेदनशीलता बढ़ेगी कि बच्चे और वयस्क इन विविधताओं से कैसे निपटते हैं।

वैसे तो इस पुस्तक के मुखपृष्ठ में यह सुझाया गया है कि यह तीन साल या उससे अधिक की आयु वाले बच्चों के लिए उपयुक्त है, लेकिन इसकी भाषा 6 साल और उससे अधिक आयु के बच्चों के लिए ज़्यादा उपयुक्त लगती है। कुछ शब्द, जैसे 'slight,' 'bent at an unusual angle,' and 'slung,' आदि छोटे बच्चों के लिए अपरिचित हो सकते हैं। इसके अलावा, हालाँकि शीर्षक और विवरण गिन्नी की शारीरिक भिन्नता का संकेत देते हैं, लेकिन अगर कहानी में इन शारीरिक चुनौतियों को और अधिक स्पष्ट किया जाता तो ज़्यादा अच्छा होता। एक दृश्य से दूसरे दृश्य की ओर जाते समय कुछ मसले भी नज़र आते हैं, इसलिए हो सकता है कि बच्चों को कहानी सुनाने से पहले शिक्षकों को विशेष तैयारी करनी पड़े ताकि वे उन्हें आसानी से समझ सकें। कुल मिलाकर, *कुछ अलग सी गिन्नी* दिल को छू लेने वाली और प्रेरक कहानी है जो वैयक्तिकता और स्वीकृति की शक्ति का जश्न मनाती है। यह ऐसे अभिभावकों और शिक्षकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण संसाधन है जो युवा पाठकों में दूसरों के प्रति सहानुभूति और समझ को बढ़ावा देना चाहते हैं, ख़ासकर उन लोगों के लिए, जो शारीरिक तौर पर और सीखने की दृष्टि से अलग हैं।

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

शारुन सनी एक English Language Teaching (ELT) पेशेवर और शिक्षक प्रशिक्षक हैं। रचनात्मकता की शोधकर्ता और लेखन की शिक्षिका के रूप में, वे उस सूक्ष्म रेखा को खोजने की कोशिश करती हैं जो रचनात्मकता, प्रांजलता और सादगी को एक साथ लाती है। वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में पढ़ाती हैं।

चुस्कित स्कूल चली

समीक्षा : ध्रुवा देसाई

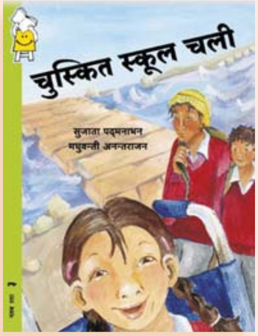

लेखिका : सुजाता पद्मनाभन

चित्रकार : मधुवन्ती अनन्तराजन

पृष्ठ : 22

भाषा : अँग्रेज़ी

प्रकाशक : स्टोरीवीवर, प्रथम बुक्स

चुस्कित स्कूल चली एक छोटी विकलांग लद्दाखी लड़की की कहानी है जो हमेशा से स्कूल जाना चाहती थी। उसके परिवार ने हर तरह से उसका साथ दिया है, और उसे पहियों वाली एक शानदार कुर्सी भी दिलवाई है। लेकिन स्कूल जाने का रास्ता ऐसा नहीं था जिसे वह अपनी पहिया कुर्सी पर बैठकर पार कर सके। रास्ता ऊबड़-खाबड़ और पथरीला था, और बीच में एक छोटा-सा नाला बहता था। इन कारणों से वह 9 साल की उम्र तक स्कूल नहीं जा पाई। एक दिन उसके गाँव का एक लड़का उससे स्कूल जाने के बारे में बात करता है। जब वह देखता है कि चुस्कित स्कूल जाने के लिए बहुत उत्सुक है तो वह चुस्कित को स्कूल भेजने का तरीक़ा खोजने लगता है और इस बारे में अपने प्रधानाध्यापक से बात करता है। इस कहानी की शुरुआत उस रोमांचक दिन से होती है जिस दिन चुस्कित स्कूल जा रही होती है।

इस पुस्तक की सबसे अच्छी बात यह है कि इसमें लद्दाखी संस्कृति और भाषा के बारे में जानकारी मिलती है। पाठ में कई सामान्य शब्द और अभिवादन लद्दाखी भाषा में हैं, और अन्त में एक शब्दावली भी दी गई है। वैसे कहानी का सन्दर्भ इतनी अच्छी तरह से बताया गया है कि अपरिचित शब्दों के अर्थ निकालना मुश्किल नहीं है। इसके साथ ही, शानदार चित्र भी लद्दाखी जीवन की झलक दिखाते हैं। ये चीज़ें कहानी को बेहद स्पष्टता से चित्रित करती हैं, और लद्दाखी परिदृश्य, वास्तुकला एवं अन्य विवरण भी इतनी अच्छी तरह सामने रखती हैं कि पाठक बड़ी आसानी से उस माहौल की कल्पना कर पाते हैं।

इस कहानी का मुख्य विचार बड़े ध्यान से, और ईमानदारी के साथ पेश किया गया है। एक ओर, जहाँ पाठक चुस्कित और उसके परिवार के सदस्यों के सामने आने वाली चुनौतियों के बारे में जान पाते हैं, वहीं दूसरी ओर इसमें समावेशन का स्वर हर जगह मुखरित है। कहानी का लगभग हर पात्र, अधिक समावेशी समाज बनाने के लिए और विशेषतौर से चुस्कित के लिए समावेशन की दिशा में काम करता नज़र आता है।

ऐसे प्रयासों के ख़िलाफ़ कुछ आवाज़ें भी उठती हैं। ये आवाज़ें स्कूल के कुछ शिक्षकों की हैं जो (सभी समाजों की तरह) चुस्कित के स्कूल आने के ख़िलाफ़ नहीं हैं, लेकिन शायद वे उन प्रयासों को साकार करने के लिए आवश्यक कार्य की कल्पना करने या उसे करने में अनिच्छुक या असमर्थ हैं। कहानी में, इन पात्रों के ऐसे विचारों को बेहद मज़बूती से सम्बोधित किया गया है, और पुस्तक का कथानक शिक्षकों की आपत्तियों का जवाब देता है। इन सभी पहलुओं की वजह से यह पुस्तक विकलांगता, विविधता और समावेशन के सवालों से बच्चों को जोड़ने वाली एक अद्भुत पुस्तक बन जाती है। शिक्षकों और अभिभावकों में यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि वे छोटे बच्चों के साथ 'उलझन-भरी' बातचीत से बचने की कोशिश करते हैं। हालाँकि, कभी-कभी वे भूल जाते हैं कि वे भी तो उसी दुनिया में रहते हैं। कक्षा में इस तरह की किताबें पढ़ने से इन विचारों को पेश करने और रोचक व मज़ेदार तरीक़ों से इस तरह की ज़रूरी बातचीत को शुरू करने में मदद मिलती है।

चुस्कित और उसका परिवार विकलांगता और विविधता के विचार को समझने में भी मदद करता है। वे ख़ुद पर दया करने वाले पात्र नहीं हैं, बल्कि वे तो ख़ुशमिजाज़ और बहुआयामी पात्र हैं जिनके लिए यह चुनौती वास्तविक होते हुए भी उनके जीवन का सिर्फ़ एक पहलू है। सभी अच्छी किताबों की तरह, यह पुस्तक भी पाठकों के लिए एक दर्पण और एक खिड़की, दोनों का काम करती है। यह पुस्तक एक नई और अलग दुनिया को प्रदर्शित करने के साथ ही उनकी दुनिया में परिचित चीज़ों के साथ सम्बन्ध भी रखती है।

कहीं-कहीं यह कहानी थोड़ी कठिन लग सकती है, जैसे जब चुस्कित का मित्र प्रधानाध्यापक से बात करता है, और उनके प्रयासों को 'नागरिकों के मौलिक अधिकारों' से जोड़ता है। लेकिन न तो यह बात कहानी से ध्यान हटाती है न ही कहानी के समाधान के वे जटिल पहलू कहानी से ध्यान हटा पाते हैं (जैसे नौकरशाही प्रक्रियाएँ), जिन्हें तेज़ी से आगे बढ़ाया गया है।

प्रथम बुक्स ने इस कहानी की पुस्तक को तीसरे स्तर के पाठकों के लिए सही माना है। यानी, ऐसे पाठक जो स्वतंत्र रूप से पढ़ सकते हैं। हमारे देश की कक्षाओं में भाषाओं की जटिलता होती है जिसके कारण समान रूप से स्तर बनाना मुश्किल होता है। यह कहानी छोटे बच्चों को भी पढ़कर सुनाई जा सकती है, और तब ये बच्चे शिक्षक / पुस्तकालयाध्यक्ष / अभिभावकों की मदद से निश्चित ही इस कहानी के साथ सार्थक रूप से जुड़ पाएँगे।

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

ध्रुवा देसाई अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में शिक्षक-शिक्षा टीम के सदस्य हैं। अपने व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन में वे अपना अधिकांश समय या तो खेलने और शारीरिक शिक्षा के बारे में सोचने में बिताते हैं, या फिर बच्चों के साहित्य को पढ़ने और उसके बारे में सोचने में।

गप्पू नाच नहीं सकती

समीक्षा : निशा नाग

लेखिका : मेनका रमन

चित्रकार : कृष्णा चंद्रन

पृष्ठ संख्या : 13

भाषा : हिन्दी (अँग्रेज़ी में भी उपलब्ध)

अनुवाद : पुरणेश कुमार त्रिपाठी

प्रकाशक : प्रथम बुक्स

बच्चों की दुनिया में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे, जिन्हें 'स्पेशल चाइल्ड' कहते हैं, कैसे समाज में ग़ैर-बराबरी का स्थान पाते हैं, इससे हम सब वाक़िफ़ हैं। आमतौर पर यह माना जाता है कि विशिष्ट बच्चा या बच्ची वह है जो बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक या संवेगात्मक दृष्टि से सामान्य समझे जाने वाले बच्चों से इतना भिन्न होता है कि वह विद्यालय के नियमित कार्यक्रमों से पूरा लाभ नहीं उठा सकता। उसे विशेष कक्षा अथवा पूरक शिक्षण और सेवा की ज़रूरत होती है। समावेशी शिक्षा का मूल आधार ही समानता है। समानता का यह भाव तय करता है कि सभी विद्यार्थियों को उनकी योग्यता या अक्षमता के बावजूद सीखने और कक्षा की गतिविधियों में भाग लेने के समान अवसर मिलें। समावेशी शिक्षा पद्धति में विशिष्ट बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ बिना किसी भेदभाव के शिक्षा दी जाती है। यह अपेक्षा इस विचार का परिणाम है कि इस तरह के बच्चों को सामान्य बच्चों के बीच ही पलने-बढ़ने और शिक्षा पाने का अधिकार होना चाहिए, ताकि ये समाज से अलग-थलग और उससे जुदा महसूस न करें। यह पहल बेहतर समाज का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके लिए महत्त्वपूर्ण है कक्षा की गतिविधियों में सभी बच्चों का समान रूप से भाग लेना। लेकिन यदि कोई विशेष बच्चा, जो बाएँ हाथ व पैर से मजबूर है, और कक्षा की गतिविधि में अध्यापिका जो कहें, ठीक उससे उलट करे तब क्या हो? कक्षा के दूसरे विद्यार्थियों के बीच उसका समावेशन किस तरह कराया जाए? *गप्पू नाच नहीं सकती* ऐसी ही परिस्थिति का सटीक जवाब है।

कक्षा में गप्पू एक ऐसी अस्थि विकलांग बालिका है जिसके बाएँ हाथ की हड्डियाँ, जोड़ और माँसपेशियाँ सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाती हैं।

गप्पू की सीमाओं को समझते हुए उसकी अध्यापिका अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को गप्पू के साथ तालमेल बैठाने के लिए कहती हैं। वह गप्पू की व्यक्तिगत भिन्नता को संसाधन की तरह इस्तेमाल करती हैं। अध्यापिका में समस्या-समाधान का कौशल है। बजाय इसके कि गप्पू अलग-थलग बनी रहे, अध्यापिका समस्या को सुलझाने के लिए अलग तरह से सोचती हैं। वे कक्षा को गप्पू के साथ तालमेल बैठाने को कहकर गप्पू का हौसला बढ़ाती हैं। गप्पू की आवश्यकता को महत्त्व देते हुए वह उसकी ज़रूरत के अनुसार उस नृत्य संरचना को भी बदल देती हैं जो विद्यार्थियों के साथ ही गप्पू में भी सामूहिक कार्य कुशलता को विकसित करने में सहायक होती है। अध्यापिका की इस पहल से दूसरे बच्चों में भी सकारात्मक सोच, स्वीकृति, धैर्य, सहनशीलता, मित्रता, आदि कौशलों का विकास होता है। गप्पू को कक्षा के साथ समेकित करने का अध्यापिका का यह प्रयास सीखने में समावेशन का एक अलग नज़रिया प्रस्तुत करता है।

कुल मिलाकर, 130 शब्दों की छोटी-सी चित्र कहानी की यह पुस्तिका समावेशन के लिए प्रयोगशीलता का एक उम्दा उदाहरण है। तालबद्ध शब्द संरचना इस कहानी की विशेषता है। इस कहानी को टटोलते हुए गप्पू की कक्षा का पूरा दृश्य आँखों के सामने उभर आता है। अध्यापिका बच्चों को निर्देश देती हैं– "तक धिमि तई / अपने बाएँ हाथ को ऊपर उठाएँ!"

"ओ हो! गप्पू अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाती है। गप्पू नाच नहीं सकती!" दूसरी शारीरिक क्रियाओं के साथ 'गप्पू नाच नहीं सकती' वाक्य कहानी में तीन बार और आता है। इसी तरह, जब बच्चों को तेज़ी से घूमने का निर्देश दिया जाता है, गप्पू बहुत धीमे घूमती है। इसका कारण उसकी अपनी सीमाएँ हैं। "टप टपाटप टप, सब कूदो झटपट" का निर्देश मिलने पर गप्पू बैठ जाती है, और दाहिना पैर अन्दर करने के निर्देश पर वह उसे बाहर निकालती है। निर्देशों के विपरीत, गप्पू के ग़लत स्टेप करने पर सभी बच्चे उसकी ओर

इशारा करते हुए हँसते हैं। यह देखकर अध्यापिका अपने निर्देश बदल देती हैं, और कहती हैं, "तक धिमि तई / कुछ बच्चे हाथ नीचे और कुछ ऊपर रखो भई।" वह घूमने के निर्देश को भी बदलकर कहती हैं, "पूरे कमरे में तेज़ और धीमे कूद या जैसा मन हो वैसे कूद झटपट। बस हो जाओ शामिल सोचे बिना।" इसका नतीजा यह होता है कि गप्पू अब नाच सकती है क्योंकि अब उसे सँकरी सीमाओं में बँधकर नहीं नाचना। इस युक्ति का श्रेय अध्यापिका को जाता है। इसके साथ ही, अध्यापिका यह सन्देश भी देती हैं कि किस तरह कक्षा में विशेष बच्चों का समावेशन किया जा सकता है।

तेरह पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तिका की छपाई आकर्षक है। आवरण और भीतरी चित्र बरबस ही ध्यान खींच लेते हैं। पुस्तक के चित्रांकन की विशेषता उसका रंग संयोजन है, अध्यापिका की मुद्राएँ और बच्चों की आँखें विशेषतौर पर ध्यान खींचती हैं क्योंकि उनमें झाँकता आश्चर्य और कौतूहल मानो बचपन को साकार कर देता है। पुस्तक पठनीय ही नहीं, गतिविधियों को संयोजित कराने वाली भी है।

इस पुस्तिका में, एक और सन्देश भी समाया हुआ है कि बच्चों की सीखने की श्रृंखला में कुछ भी ग़लत नहीं होता। बँधी-बँधाई परिपाटी से अलग, बच्चे दूसरी क्रियाओं द्वारा भी बहुत कुछ सीखते हैं।

निशा नाग मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं, जहाँ वे 26 वर्षों से अध्यापन कर रही हैं। विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में आपकी समीक्षाएँ, लेख व कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं।

उत्तराखण्ड के एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय की कक्षा में सजी कहानी की किताबें

सामाजिक सम्बन्धों, नैतिक विकल्पों, भावनाओं को समझने एवं अनुभव करने और जीवन कौशल के बारे में जागरूक होने के लिए कहानियाँ विशेष रूप से एक अच्छा माध्यम हैं। कहानियाँ सुनते समय, बच्चे नए शब्द सीखते हैं, इस प्रकार उनकी शब्दावली, वाक्य संरचना और समस्या-समाधान कौशल का विस्तार होता है। बहुत कम ध्यान अवधि वाले बच्चे कहानी में तल्लीन होने पर लम्बे समय तक ध्यान केन्द्रित करते हैं। *(1.5.2.2. स्टोरीटेलिंग, एनसीएफ-एसई-2023)*

आइए, करके देखें

यहाँ दी गईं सभी गतिविधियों को समावेशन को ध्यान में रखते हुए चुना गया है। ऐसी गतिविधियाँ जिनमें हर तरह की अस्मिता, योग्यता और व्यवहार (सक्रिय, संकोची) के बच्चे न सिर्फ़ बराबर से प्रतिभाग कर सकें बल्कि पूरा आनन्द भी लें। इन सभी गतिविधियों की विशेषता इनकी सरलता है, और इनमें कोई भी बच्चा खेल से बाहर नहीं होता है।

संगीत गतिविधि

यह गतिविधि छोटे समूह जिसमें 5-10 बच्चे हों, या बड़े समूह जिसमें 15-20 बच्चे हों, के साथ की जा सकती है।

आसान / मध्यम स्तर : हर बच्चे को अपने लिए एक मज़ेदार-सी गतिविधि (एक्शन) सोचनी होती है जिसे वो आसानी से कर सके। इसमें ताली बजाना, चुटकी बजाना, गर्दन को दाएँ-बाएँ घुमाना, पैर को ज़मीन पर धीरे-धीरे मारना, मुँह से सीटी बजाने या गुनगुनाने जैसी कुछ आवाज़ें निकालना, आदि शामिल हैं।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

एक बच्चा अपनी सोची हुई गतिविधि को करता है, जैसे– ताली बजाना। समूह के बाक़ी बच्चे उसे दोहराते हैं। तीन से चार बार दोहराने के बाद अगले बच्चे की बारी आती है और वो अपनी सोची हुई गतिविधि करता है। इस तरह बारी-बारी से हर बच्चे का नम्बर आता है और खेल आगे बढ़ता जाता है। इस खेल में बच्चे ज़मीन पर बैठकर, खड़े होकर, कुर्सी पर बैठकर, आदि कैसे भी शामिल हो सकते हैं।

जटिल स्तर : बच्चे इस तरह के अलग-अलग वाक्य को अपने तरीक़े से कहते हैं। उदाहरण के लिए, कोई बच्चा गाना गाने की तरह कह सकता है, ''मैं कमला हूँ, और मुझे गाना पसन्द है;'' या फिर ''मेरा नाम रेशमा है और मुझे राजमा पसन्द है;'' ''मेरा नाम कबीर है, मुझे खेलना पसन्द है;'' आदि जैसे वाक्य बारी-बारी से अपनी तरह से गाकर, गुनगुनाकर, धीमी आवाज़ में फुसफुसाकर बोलते हुए खेल को आगे बढ़ाते हैं।

दृश्य कला गतिविधि

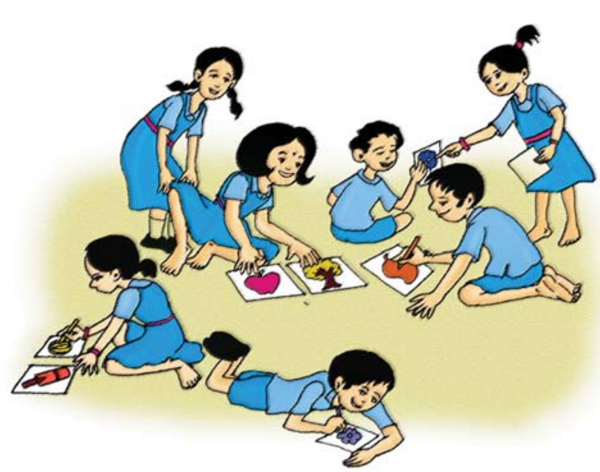

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

यह गतिविधि 5 से 6 विद्यार्थियों के छोटे समूहों में की जा सकती है। समूह के प्रत्येक विद्यार्थी को समूह के अन्य बच्चों को निर्देश देने का अवसर मिलता है। यह निर्देश अकसर चित्र बनाने से सम्बन्धित होता है। अपने निर्देश के बारे में सोचने के लिए विद्यार्थी के पास 1 मिनट का समय होता है। और फिर निर्देश का अनुसरण करने के लिए समूह के हर बच्चे को एक मिनट का समय दिया जाता है।

आसान स्तर : प्रत्येक विद्यार्थी बारी-बारी से उस किसी साधारण वस्तु या जीवित प्राणी के बारे में सोचता है जिसकी छवि की कल्पना की जा सकती है। वह उसका नाम पूरे समूह को ज़ोर से बोलकर बताता है, और तब समूह के बाक़ी विद्यार्थी उसका चित्र बनाते हैं।

मध्यम स्तर : प्रत्येक विद्यार्थी बारी-बारी से एक सरल पैटर्न या ड्राइंग बनाता है, और उसे दूसरे विद्यार्थियों को दिखाता है। दूसरों को यथासम्भव उससे मिलता जुलता चित्र बनाना होता है।

जटिल स्तर : प्रत्येक विद्यार्थी के पास 4 से 5 फ़्लैशकार्ड होते हैं। हर विद्यार्थी अपने फ़्लैशकार्डों पर कोई सरल चित्र या पैटर्न बनाता है। फिर सभी विद्यार्थी एक कार्ड अपने पास रखकर बाक़ी कार्ड को अपने समूह के सदस्यों के साथ अदल-बदल लेते हैं। इसके बाद, प्रत्येक बच्चा ख़ुद को मिले हुए सभी फ़्लैशकार्डों में बने चित्रों को बनाता है।

मध्यम और जटिल स्तर के लिए समय सीमा पहले स्तर की तुलना में कुछ अधिक होती है।

यह गतिविधि समावेशन को कैसे सम्बोधित करती है ?

प्रत्येक विद्यार्थी के विचार को न केवल उसकी अपनी ड्राइंग में, बल्कि दूसरों की ड्राइंग में भी जगह मिलती है। इससे सभी विद्यार्थी अपने साथियों के विचारों और अभिव्यक्तियों को स्वीकार करते हैं, और उनके साथ काम करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। यदि कक्षा में कुछ दृष्टि बाधित विद्यार्थी हैं तो इस गतिविधि के लिए मिट्टी (क्ले) जैसे माध्यमों का इस्तेमाल किया जा सकता है।

विद्यार्थियों की ज़रूरतों और क्षमताओं के आधार पर इन गतिविधियों को बदला जा सकता है। इनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी विद्यार्थी गतिविधियों में भाग ले सकें, और उनका आनन्द उठा सकें।

*इन दो गतिविधियों का सुझाव गुजरात के वडोदरा की एक दृश्य कलाकार (विज़ुअल आर्टिस्ट) और शिक्षिका **मालविका राजनारायण** ने दिया है। वे अज़ीम प्रेमजी स्कूलों के दृश्य कला और संगीत शिक्षकों को सहायता और संसाधन प्रदान करती हैं। आप अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल में विज़िटिंग फ़ैकल्टी भी हैं।*

समावेशी संगीत कुर्सियाँ (म्युज़िकल चेयर्स)

भले ही कोई बूढ़ा हो या छोटा, सभी म्युज़िकल चेयर्स के खेल को पसन्द करते हैं। अधिकांश समूह खेलों की तरह, इसमें भी खिलाड़ी तब तक आउट होते रहते हैं जब तक कि केवल एक व्यक्ति शेष न रह जाए, और अन्त में उसी बचे हुए व्यक्ति को विजेता घोषित किया जाता है।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

इस सामान्य खेल को यहाँ थोड़ा-सा बदलकर प्रस्तुत किया गया है। इसका श्रेय जापानियों को दिया जाता है जिसे हम 'समावेशी संगीत कुर्सियाँ' कह सकते हैं। इस खेल को इस प्रकार से खेला जाता है :

1. यह खेल 4 से 5 बच्चों के 2 से 5 समूहों में खेला जाता है।
2. प्रत्येक समूह के लिए गोलाकार में कुर्सियाँ रखें, कुर्सियों का पीठ वाला हिस्सा गोले के अन्दर की तरफ़ और बैठने वाला हिस्सा बाहर की तरफ़ होगा। खिलाड़ियों की संख्या से एक कुर्सी कम रखें। माने, यदि एक समूह में 5 खिलाड़ी हैं तो केवल 4 कुर्सियाँ रखें। (बैठने के लिए, कुर्सियों की जगह अख़बारों का इस्तेमाल भी किया जा सकता है।)
3. जब बच्चे कुर्सियों के चारों ओर घूमें तो कोई संगीत बजाएँ।
4. जब आप संगीत बन्द कर दें तो प्रत्येक बच्चे को बैठने के लिए एक कुर्सी ढूँढ़नी होगी। वे कुर्सी खोजने के लिए पीछे नहीं जा सकते, केवल आगे की ओर बढ़ सकते हैं।
5. सभी बच्चों के लिए बैठना ज़रूरी है। इसलिए उन्हें उस बच्चे के लिए जगह बनानी होगी जिसे कुर्सी नहीं मिल पाई क्योंकि अगर कोई बच्चा खड़ा रहता है तो इसे पूरे समूह की हार माना जाता है।
6. जैसे-जैसे कुर्सियों की संख्या कम होती जाती है, खेल अधिक चुनौतीपूर्ण और मज़ेदार होता जाता है, और बच्चे एक दूसरे की गोद में बैठना शुरू कर देते हैं।
7. जब केवल एक कुर्सी बचती है तो वह समूह (या एक से अधिक समूह), जिसने अपने पूरे समूह को एक ही कुर्सी पर बैठाया है, विजेता होता है।

*यह गतिविधि हरियाणा के फ़रीदाबाद में रहने वाली एक विशेष शिक्षिका (स्पेशल एजुकेटर) **प्रतिमा शर्मा** द्वारा सुझाई गई है।*

अँग्रेज़ी से नलिनी रावल द्वारा अनुवादित।

सम्पादक के नाम

बच्चों का शरारत करना नैसर्गिक और सामान्य गुण है

पाठशाला के 20वें अंक में दीपाली शुक्ला का लेख 'मैटी, बैठ जाओ! बैठ जाओ मैटी!' पढ़ने का अवसर मिला। शिक्षण के दौरान मैंने यह पुस्तक बच्चों को पढ़ाई थी। मैंने जिस तरीक़े से पढ़ाई, और दीपाली शुक्ला द्वारा जिस तरीक़े से पढ़ने को बोला गया, उसमें ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। वास्तव में, हमारी कक्षाओं में कई हाइपरएक्टिव बच्चे होते हैं। वह मैटी की तरह नाचते नहीं, बस अपनी हाइपरएक्टिवनेस दिखाने के लिए एक दूसरे से बातें करते हैं, शरारतें करते हैं।

इस लेख को पढ़कर मेरी दो नई समझ विकसित हुईं। पहली, कक्षा में बच्चों का शरारत करना एक नैसर्गिक और सामान्य प्रक्रिया है। शिक्षक होने के नाते हम उन्हें दिशा भर दिखा सकते हैं, और प्रयास कर सकते हैं कि उनकी हाइपरएक्टिवनेस को रचनात्मकता में बदल दिया जाए। दूसरी, एक कहानी आपको कक्षा शिक्षण के दौरान काम करने के बहुत सारे मौक़े देती है। इस लेख को पढ़ने के बाद मैंने कहानी कहने के अपने ढंग में बहुत बदलाव किया है। इस लेख ने मुझे शिक्षक के रूप में और अधिक संवेदनशील बनाने में मदद की है।

अरविन्द कुमार सिंह, सहायक अध्यापक, प्राथमिक विद्यालय बंगला पूठरी, ज़िला बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश

नई संस्कृति बनाने की ओर

पाठशाला के 20वें अंक में प्रकाशित लेख 'रचनात्मक विवाद द्वारा सीखना' मुझे अच्छा लगा। अमन मदान द्वारा लिखित इस लेख की सबसे अच्छी बात यह थी कि रचनात्मक विवाद से भी हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। लेखक ने विवादों को हल करने के जो तरीक़े सुझाए हैं, वह मेरी कक्षा और मेरे काम से भी जुड़ते हैं। कई बार मैं भी बच्चों के काम और उनकी बातों को अनसुना कर अपना निर्णय उनपर थोप देता हूँ। लेख पढ़ने के बाद लगा कि यह क़तई ठीक नहीं है। मेरी कक्षाओं में भी अकसर ऐसा होता है कि बच्चों के दो समूह बन जाते हैं। एक समूह कहता है कि सर, खेलते हैं, वहीं दूसरा कहता है, नहीं सर, पढ़ाओ। इसके समाधान के बारे में मैंने अभी तक तो नहीं सोचा था, और अगर इस लेख को नहीं पढ़ता तो शायद सोचता भी नहीं। इस लेख ने मुझे एक नया विचार सुझाया है कि क्यों न हम इस तरह से दोनों समूहों के साथ बातचीत करें, और मिलकर कोई नतीजा निकालें।

चरनजीत सिंह, सहायक शिक्षक, प्राथमिक स्कूल खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

बच्चों के साथ धैर्य से और सतत काम की ज़रूरत होती है

पाठशाला के अंक 21 में अर्चना अरोड़ा का साक्षात्कार काफ़ी अनुभव समृद्ध है। बच्चों के साथ जिस धैर्य से और सतत काम की ज़रूरत होती है, उसे इस साक्षात्कार से गुज़रते हुए समझा जा सकता है। इसी अंक में सुमन पटेल का आलेख 'हम नईं बनात रोटी' बेहद विचारोत्तेजक आलेख है। इसे पढ़कर यह समझ बनती है कि लड़का और लड़की या स्त्री और पुरुष अलग-अलग नहीं होते हैं। हम सभी इंसान हैं, मानव हैं, व प्रकृतिजन्य हैं। कार्यों का बँटवारा हमने, हमारे समाज ने किया है। हमें इस तरह की बातों से बचना चाहिए जिनसे कि यह दूरी बढ़े। इस तरह के आलेख को छापने और हम सब तक पहुँचाने के लिए *पाठशाला* की पूरी टीम का हार्दिक साधुवाद।

रजनी बाई देवतवाल, शिक्षिका, सीनियर सेकेंडरी स्कूल रामपुरा ऊंटी, सांगानेर ग्रामीण, ज़िला जयपुर, राजस्थान

डर के माहौल का बच्चों के मन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है

पाठशाला के 21वें अंक में प्रकाशित लेख 'बच्चों के मन से मस्तिष्क तक' मुझे बहुत अच्छा लगा। यह लेख विद्यालयी परिवेश के अन्तर्गत विद्यार्थियों को शिक्षकों के द्वारा किस तरीक़े से किसी विषय को समझाया जाए, इस बिन्दु पर प्रकाश डालता है। लेख कहता है कि बच्चे बिना किसी डर और भय के किसी विषय को आसानी से समझ पाएँ। इसमें ठीक ही लिखा है कि डर के माहौल का बच्चों के मन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिससे उनका सीखना प्रभावित होता है। लेख में एक आदमी और पेड़ की कहानी के द्वारा इसे बड़ी सहजता के साथ बताया गया है।

सत्यवान खलखो, सहायक शिक्षक, राजकीय प्राथमिक विद्यालय हर्रा तीनटांगर, ज़िला गुमला, झारखण्ड

जेंडर भेद की खाई को धीरे–धीरे ही पाटा जा सकता है

पाठशाला के 21वें अंक में सुमन पटेल के द्वारा लिखा गया आलेख 'हम नईं बनात रोटी' जैसे आलेखों की आज के परिदृश्य में सख़्त आवश्यकता है। जेंडर भेद के कारण हमारे समाज में ही नहीं, पूरी दुनिया में स्त्रियों को अनेकोनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आलेख से समझ बन रही है कि अगर बचपन में ही बच्चों को सिखा दिया जाए कि इस तरह के भेद का कोई औचित्य नहीं है तो आगे जाकर यह उपाय कारगर सिद्ध हो सकता है। इससे समझ में आया है कि यह भेदभाव सभी के द्वारा किया जाता है। यह विद्यालय में भी होता है, परिवार में, समाज में, खेल के मैदान और सांस्कृतिक मंच पर भी होता है। यानी, स्त्रियों को हर जगह पर इस तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ता है। यह एक बड़ी खाई है जिसे धीरे-धीरे ही पाटा जा सकता है। इसे पाटने के लिए हमें बच्चों के साथ छोटी-छोटी बातचीत व गतिविधियों के साथ कार्य करने की ज़रूरत है।

अनिता शर्मा, अध्यापिका, महात्मा गाँधी विद्यालय प्रताप नगर, ज़िला जयपुर, राजस्थान

सुबह की शुरुआत, नई ऊर्जा के साथ

पाठशाला के अंक 21 में प्रकाशित अंशिका शर्मा का लेख 'सुबह की सभा : बदलाव की शुरुआत' पढ़ा। आलेख में लेखिका ने बताया है कि कैसे उन्होंने सुबह की सभा में कुछ बदलाव कर इसकी शुरुआत एक नई ऊर्जा के साथ की। स्कूलों में संचालित होने वाली पारम्परिक सुबह की सभा न सिर्फ़ बच्चों, बल्कि हम शिक्षकों के लिए भी बेहद बोझिल करने वाली प्रक्रिया बन जाती है।

आलेख में एक बच्चे के परिवार में घटित मृत्यु की घटना को सुबह की सभा में साझा करने का विचार अपने आप में एक अनूठा प्रयास है, और शिक्षक एवं बच्चों के गहरे रिश्ते की तरफ़ इशारा करता है। यह सभा बच्चों को अपने विचार साझा करने का मंच बनी। शिक्षकों ने भी इस बात को बख़ूबी दस्तावेज़ित किया कि किस बच्चे ने कितनी बार अपनी बात को साझा किया है। इससे हम उन बच्चों को प्रोत्साहित कर सकते हैं जो कभी सुबह की सभा में सामने नहीं आते।

पल्लवी दीवान, चगोराभाटा पूर्व स्कूल, ज़िला रायपुर, छत्तीसगढ़

पढ़ना–लिखना सीखने की चाबी है पुस्तकालय

मुझे *पाठशाला* के 21वें अंक का लेख 'शाला में पुस्तकालय : पढ़ने-लिखने के सन्दर्भ में' बहुत सारगर्भित लगा। इसके लेखक धीरज पटेल ने कक्षा में पुस्तकालय निर्माण और उससे सम्बन्धित गतिविधियों को बेहद अच्छे, व्यवस्थित और सिलसिलेवार तरीक़े से समझाया है। जैसे– लेखक ने पुस्तकालय के उद्देश्य में लिखा है, "विद्यालय की किताबों को पढ़ने-पढ़ाने की आदत से जोड़ना; उनमें कहानी पढ़ने, सुनने-सुनाने एवं स्वयं से कहानी बनाने जैसे कौशलों का विकास; उन्हें स्वतंत्र अभिव्यक्ति और लेखन की ओर ले जाना; आदि।" इसके साथ ही, उन्होंने उद्देश्यों को अधिगम प्रतिफल से साथ जोड़ा है जिससे लेख और भी समृद्ध बन गया है।

लेख में पुस्तकालय से सम्बन्धित मौखिक और लिखित कार्य बहुत रोचक लगा। इसके अन्तर्गत प्रार्थना सभा में मौखिक रूप से कहानी सुनाना शुरू किया गया। ऐसी गतिविधि प्रार्थना सभा को और जीवन्त बनाने में कारगर होती है। लेखक ने लेखन सम्बन्धी कार्य को चरणवार करवाया। पहले चरण में उन्होंने बच्चों को पढ़ी गई कहानी के आधार पर दूसरी कहानी लिखवाई, और दूसरे चरण में उनसे स्वयं कहानी बनाकर लिखवाई। पढ़ना-लिखना सिखाने के लिए यह बहुत प्रभावी गतिविधि है। मेरा भी अनुभव रहा है कि जब बच्चों को कहानियों के माध्यम से पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है, वे ज़्यादा जल्दी सीखते हैं क्योंकि कहानियों में वे अपने अथाह अनुभवों को शामिल कर पाते हैं, और उनमें उन्हें कुछ भी शामिल करने की पूरी स्वतंत्रता होती है।

सुमन पटेल, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन राहतगढ़, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

बच्चे किताबों को उलटें–पलटें, यह महत्त्वपूर्ण है

पाठशाला के 21वें अंक में धीरज पटेल का लेख 'शाला में पुस्तकालय : पढ़ने-लिखने के सन्दर्भ में' पढ़ा। वैसे तो हम सभी के स्कूलों में मुस्कान पुस्तकालय उपलब्ध है, लेकिन इसके बावजूद बमुश्किल 10 फ़ीसदी बच्चे ही पुस्तकालय का इस्तेमाल पढ़ने-लिखने में नियमित तौर पर करते हैं। शिक्षक भी पुस्तकालय को बच्चों के पढ़ने-लिखने के कौशल में विकास के तौर पर कम ही देख पाते

हैं। पुस्तकालय में बच्चे किताबों को उलटें-पलटें, चित्रों को देखें, और किताबों से बातें करें, यह महत्त्वपूर्ण है। लेख में किताबों की कहानियों को पढ़ने की रुचि पैदा करने के लिए इन्हें प्रार्थना सभा में सुनाने की प्रक्रिया मुझे काफ़ी अच्छी लगी।

बच्चों को पढ़ी हुईं कहानियों के द्वारा लिखित एवं मौखिक अभिव्यक्ति की ओर ले जाने के बारे में कुछ उदाहरण भी लेख में दिए गए हैं। जैसे– प्रार्थना सभा में बच्चों द्वारा कहानी सुनाना। शुरू में कुछ बच्चों ने क्रम से कहानी सुनाई। कुछ बच्चों ने किताब से पढ़कर, और कुछ ने अपने शब्दों में कहानी सुनने की कोशिश की। मुझे लगता है कि लेखक के इसी प्रयास से बच्चों में किताबें पढ़ने की रुचि पैदा हुई। यह प्रक्रिया मैं अपने स्कूल में भी ज़रूर अपनाऊँगी क्योंकि मैं भी इसी तरह के संघर्ष से जूझ रही हूँ।

सोनल तिवारी, चगोराभाटा मेन स्कूल, ज़िला रायपुर, छत्तीसगढ़

बच्चों की रुचि और प्रतिभा निखरने के अवसर बनें

मैंने *पाठशाला* के अंक 21 में प्रकाशित लेख 'फर्डिनेंड के बहाने : इंसान की पहचान और व्यक्तित्व निर्माण की उलझन पर बात' पढ़ा। इसे अनिल सिंह ने लिखा है। इसमें 'फर्डिनेंड' की कहानी के ज़रिए वर्तमान में शिक्षित समाज, परिवार, शिक्षक और अभिभावकों द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व की निर्मिति और प्रतिभा को निखारने में उनके परम्परागत तरीक़ों एवं सोच पर सवाल उठाया गया है, जबकि *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* सभी क्षेत्रों में कौशलों को महत्त्व दिए जाने, उन्हें समान नज़रिए से देखने और व्यक्तिगत हुनर को मज़बूती देने की बात कर रही है।

अभी भी शिक्षा और शिक्षित होने की कसौटी को अधिकतर समाजों में तथाकथित प्रतिष्ठित रोज़गारों से ही जोड़कर देखा जाता है। परिवार या अभिभावकों द्वारा बच्चों पर समाज व बाज़ार की अपेक्षाओं के अनुरूप तय मंज़िलें हासिल करने का दबाव बनाया जाता है। उनमें एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में तय समय में ही मक़सद को हासिल करा लेने का उतावलापन दिखता है। जब अपेक्षित परिणाम हासिल नहीं होते हैं तब बच्चे और अभिभावक, दोनों निराशा व चिन्ता में डूब जाते हैं, और उनके लिए जीवन ठहर-सा जाता है।

लेख इस ओर इशारा करता है कि राज्य और समाज की साझी ज़िम्मेदारी है कि बच्चों की व्यक्तिगत रुचियों को विकसित होने दें। उन्हें रुचियों के अनुरूप अपनी प्रतिभाओं को सँवारने-निखारने एवं व्यक्तित्व को गढ़ने का अवसर दें, और उनके लिए सोचने-समझने, चुनौतियों से जूझकर हल निकालने एवं तर्कशील बनने के लिए वातावरण रचें।

अवनीश कुमार मिश्र, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

धाराप्रवाह पढ़ना, अनुभव क्या कहते हैं?

रविशेखर वर्मा द्वारा *पाठशाला* के 21वें अंक में लिखित लेख 'धाराप्रवाह पठन' रुचिकर व पठनीय है। इससे समझ बनती है कि कक्षा में ऐसी गतिविधियों को शामिल किया जाना चाहिए जो बच्चों को व्यापक पठन करने और समझ के साथ पढ़ने में मदद करें। मेरा भी यही मानना है। मेरे अनुभव से यह भी जुड़ता है कि बच्चों को जो कहानी पढ़कर सुनाई है, वे उस किताब को लेकर पढ़ते हैं व उसपर बातचीत करते हैं। मुझे लगता है कि इस पूरी प्रक्रिया में बच्चे अनुमान भी लगाते हैं, और तब जाकर उसे समझ पाते हैं। इसीलिए यह ज़रूरी है कि बच्चों को पढ़ने के मौक़े दिए जाएँ।

मेरा यह भी एक अनुभव है कि कहानी पढ़कर समझने के साथ ही जो बच्चे पढ़ना सीख रहे हैं, उनके साथ वर्ण और मात्रा पहचान पर भी कार्य किया जा सकता है। इस कार्य में बच्चों को मज़ा भी आता है क्योंकि हम जिन वर्णों पर कार्य करते हैं, वह पढ़ाई या सुनाई गई कहानी से ही होते हैं। बार-बार प्रयोग में आने वाले शब्दों को पढ़ने पर बच्चे इन शब्दों को देखते ही पढ़ने लगते हैं। इससे पाठ पढ़ने में उन्हें बहुत मदद मिलती है। मैं अपनी शिक्षण प्रक्रिया में इसे शामिल करूँगी।

सुजाता पटेल, एकीकृत शासकीय माध्यमिक शाला कोरासा, खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

लेखकों के लिए

1. लेख वर्ड फ़ाइल में ही भेजें जिसमें कोई डिज़ाइन, बॉर्डर, बॉक्स, आदि न हों। लेख पीडीएफ़ में न भेजें।
2. लेख से सम्बन्धित तस्वीरें या कोई अन्य विज़ुअल अच्छी क्वालिटी का हो, और उसे वर्ड फ़ाइल में लगाकर भेजने की बजाय अलग से अटैच करके भेजें। तस्वीर को image 1, image 2 के नाम से सेव करके भेजें, और लेख में लिख दें कि कहाँ पर आपको लगता है कौन-सी तस्वीर लगनी चाहिए। हालाँकि, इस बारे में अन्तिम निर्णय सम्पादकीय टीम का होगा।
3. तस्वीर का सोर्स ज़रूर बताएँ। कॉपीराइट का ध्यान रखें कि तस्वीर या तो कॉपीराइट फ्री हो, या जहाँ से ली गई है वहाँ से अनुमति ली गई हो, या आभार व्यक्त किया गया हो। अगर तस्वीर आपने ख़ुद ली है तो वह भी बताएँ, और तस्वीर लेते समय, स्कूल या क्लासरूम से इजाज़त ज़रूर लें।
4. बच्चों की तस्वीरें बिलकुल न लें, ख़ासकर ऐसी तस्वीरें जिनमें उनका चेहरा स्पष्ट हो।
5. लेख में जब भी किसी किताब का अंश, लेख का अंश, किसी लेखक के उद्धरण (quote) इस्तेमाल में लाएँ, कृपया उनका उल्लेख ज़रूर करें, और क्रेडिट दें।
6. अपने लेख के साथ अपना संक्षिप्त परिचय, एक फ़ोटो जिसमें आपका चेहरा सामने से स्पष्ट और क्लोज़ हो, मोबाइल नम्बर, पूरा पता, और ईमेल आईडी भी दें।
7. जो भी लेख आप पाठशाला के लिए भेज रहे हैं, यह बहुत ज़रूरी है कि उसे न तो कहीं और भेजा गया हो न ही सोशल मीडिया पर साझा किया गया हो।
8. लेख मिलने पर आपको लेख के मिलने की सूचना तुरन्त दी जाएगी, और 30 दिन के अन्दर लेख की स्वीकृति या अस्वीकृति, या उसमें सुधार के सम्बन्ध में सूचना प्रेषित की जाएगी।
9. पत्रिका में लेखों की तीन श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में लेख 2000 शब्दों का, दूसरी में 1500 शब्दों, और तीसरी श्रेणी में यह 700 से 1000 शब्दों का होगा।
10. सम्पादकीय टीम को लेख में सम्पादन का अधिकार होगा। ज़रूरी सम्पादन के बाद आपको लेख भेजा जाएगा।
11. पाठशाला अब हिन्दी के अतिरिक्त अँग्रेज़ी और कन्नड़ में भी प्रकाशित होगी। माने, आप तीनों में से किसी भी भाषा में लेख भेज सकते हैं। लेख भेजने का आईडी है : pathshala@apu.edu.in
12. आपने जिस भी मौलिक भाषा में लेख भेजा है, अनुवाद होकर तीनों भाषाओं में प्रकाशित होगा। इसका अधिकार सम्पादकीय टीम को होगा।

किसी भी तरह की अन्य जानकारी के लिए आप सम्पर्क कर सकते हैं–
प्रतिभा (हिन्दी) : pratibha.katiyar@azimpremjifoundation.org
शेफ़ाली (अँग्रेज़ी) : shefali.mehta@apu.edu.in
राघवेंद्र हेर्ले (कन्नड़) : Raghavendra.herle@azimpremjifoundation.org

मुद्रक तथा प्रकाशक शरद सुरे, रजिस्ट्रार द्वारा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के लिए लक्ष्मी मुद्रणालय, 117, 5वीं मेन रोड, चामराजपेट, बेंगलूरु, कर्नाटक - 560018 से मुद्रित एवं अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562125 से प्रकाशित।

सम्पादक : प्रतिभा कटियार

Postgraduate Diploma Programmes in Education

Azim Premji University

For practicing professionals in the field of Education

Flexible | Blended Mode

Early Childhood Education	Inclusive Education	Teaching Children with Learning Disabilities

Key Features of the Programmes:

- The programme is aligned to the credit structure as defined by the National Credit Framework (NCrF) issued by UGC in April 2023.
- Course content and pedagogy lays emphasis on relevant theories, practice and hands on skills required for building expertise in the respective areas of early childhood education, inclusive education and teaching children with learning disabilities.
- Become a member of a community of reflective practitioners through our alumni network.
- Participants have the flexibility of joining the PG Diploma Programme or taking one or more Certificate Programmes individually.

Admission Process:

Particiants can enter into the PG Diploma Programme through any of the Certificate Programmes.

The two steps of the process are :-

Step 1: Online application form with Statement of Purpose.

Step 2: Panel Interview in online mode.

Fees and Financial Assistance:

- Fee details are available on the website.
- The University will offer financial assistance to deserving candidates based on their income. This financial assistance will be partial waivers of the fee component and will be awarded at the sole discretion of the University. The University will ask for documentary proof as required. Admission available to participants requesting financial assistance is limited.

Scan the QR code to know more:

Azim Premji University

Anuvada Sampada

अनुवाद सम्पदा

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अनुवाद रिपॉज़ेटरी

विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाले शैक्षणिक संसाधनों का भण्डार।

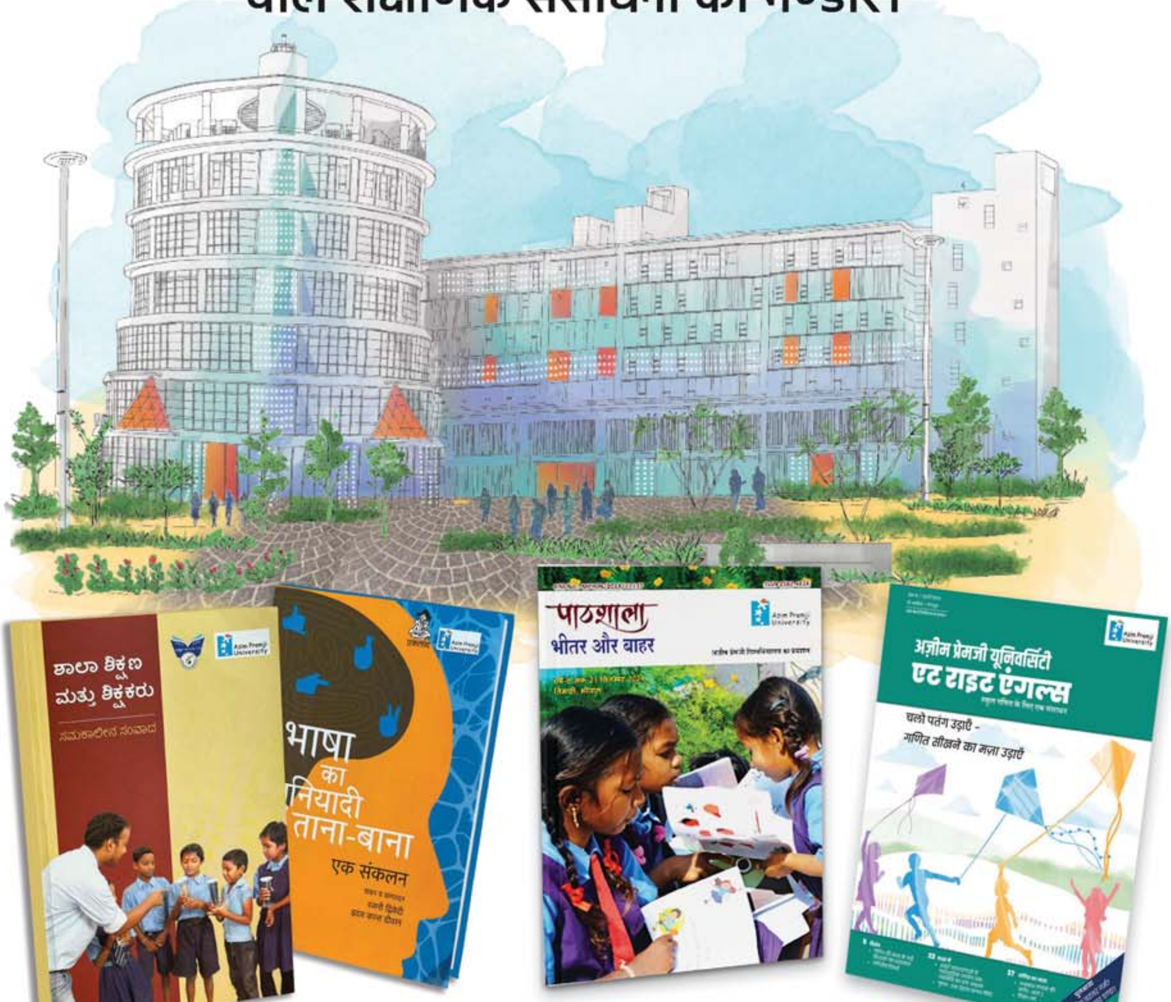

निःशुल्क, ओपन-एक्सेस पोर्टल

- पुस्तकें और पुस्तकों के अंश
- अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय प्रकाशनों के लेख
- विभिन्न स्रोतों से चयनित लेख

अनुवाद सम्पदा पर आएँ

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/

यहाँ स्कैन करें

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की पत्रिकाएँ

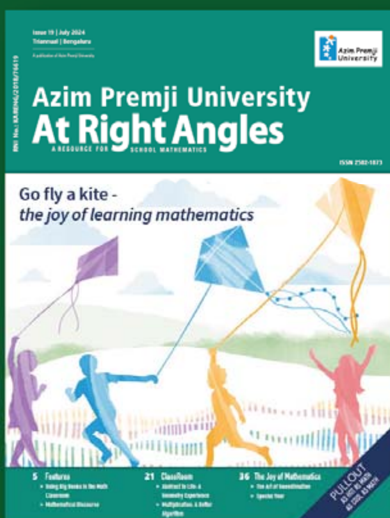

पाठशाला की सदस्यता के लिए
क्यूआर कोड स्कैन करें

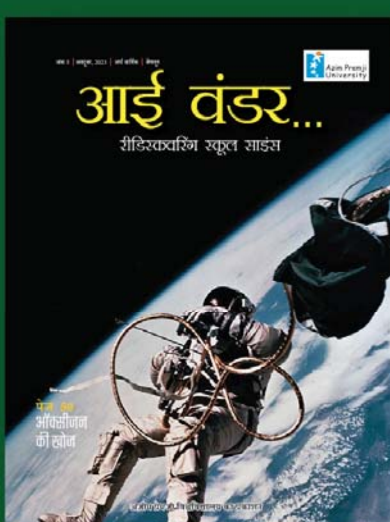

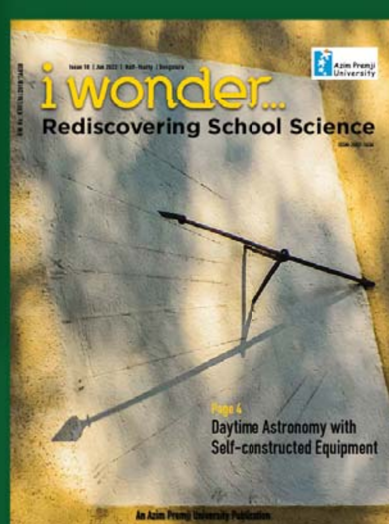

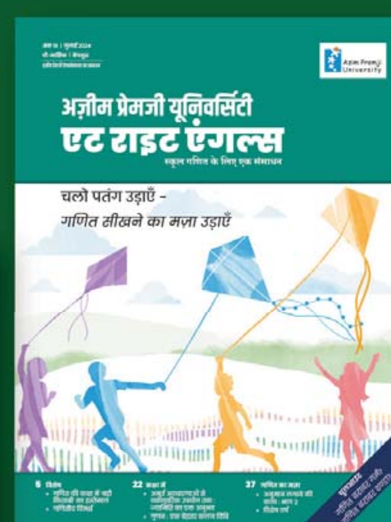

अन्य प्रकाशनों के बारे में अधिक जानने के लिए हमें लिखें - publications@apu.edu.in